Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Samaj Foundation Chen

BHASHA

main. Gurukul Kangri C

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113553

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय • शिक्षा - मंत्रालय • भारत सरकार

3041
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

COMPILED

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् - ऋग्वेद

# भाषा

त्रै मा सि क

## शांति रक्षा अंक

जनवरी 1964

Price : Inland Rs. 4.75 nP.
Foreign 11 sh. 1 d. or 1 $ 71 cents

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## उद्देश्य

- शिक्षा, कला, विज्ञान, अनुसंधान, कानून और शासन आदि के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण कर हिंदी की समृद्धि करना;
- हिंदी को सब प्रकार की अभिव्यक्ति का सशक्त और प्रभावशाली साधन बनाने के उद्देश्य से उसकी प्रकृति के अनुकूल प्रादेशिक भाषाओं का सहयोग लेना;
- समस्त भारतीय भाषाओं के बीच समानता की खोज करना और आदान-प्रदान का द्वार मुक्त करना ।

## संपादन-परामर्श-मंडल

- डॉ॰ दौलतसिंह कोठारी
- श्री रमाप्रसन्न नायक
- श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'
- डॉ॰ नगेन्द्र
- श्री रणछोड़ प्रसाद
- डॉ॰ बिश्वनाथ प्रसाद
- श्री जीवन नायक
- श्रीमती तारा तिक्कू

**संपादन:**

तारा तिक्कू

**कला:**

मनोहरलाल ओबेराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113553
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
113553

# जय जननी,
# जय भारती-

सीमा के अतिक्रमण से एक अनिर्वचनीय भावना सभी भारतीय कवियों में प्रस्फुटित हुई और उनकी वाणी में एक अखंड ज्योति प्रज्ज्वलित हो उठी। वही दायित्व-बोध, वही जोश, उनमें एक बार फिर जाग उठा, जो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आंदोलन के समय था। यह प्रतिक्रिया इस बात की द्योतक है कि कवि समाज-दृष्टा होता है और मानवीय धरातल पर संवेदनशील भी। आज देश संकट में है और वह शत्रु के प्रति तीव्र प्रतिशोध की ज्वाला से उबल पड़ा है। संकलित कविताएँ विभिन्न मनःस्थितियों के सप्राण चित्र हैं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भारति जय

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

भारति, जय विजयकरे !
कनक-शस्य-कमलधरे ।

लंका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण-युगल,
स्तव कर बहु-अर्थ धरे ।

तरु-तृण-वन-कला वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले ।

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख-शतरव-मुखरे ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

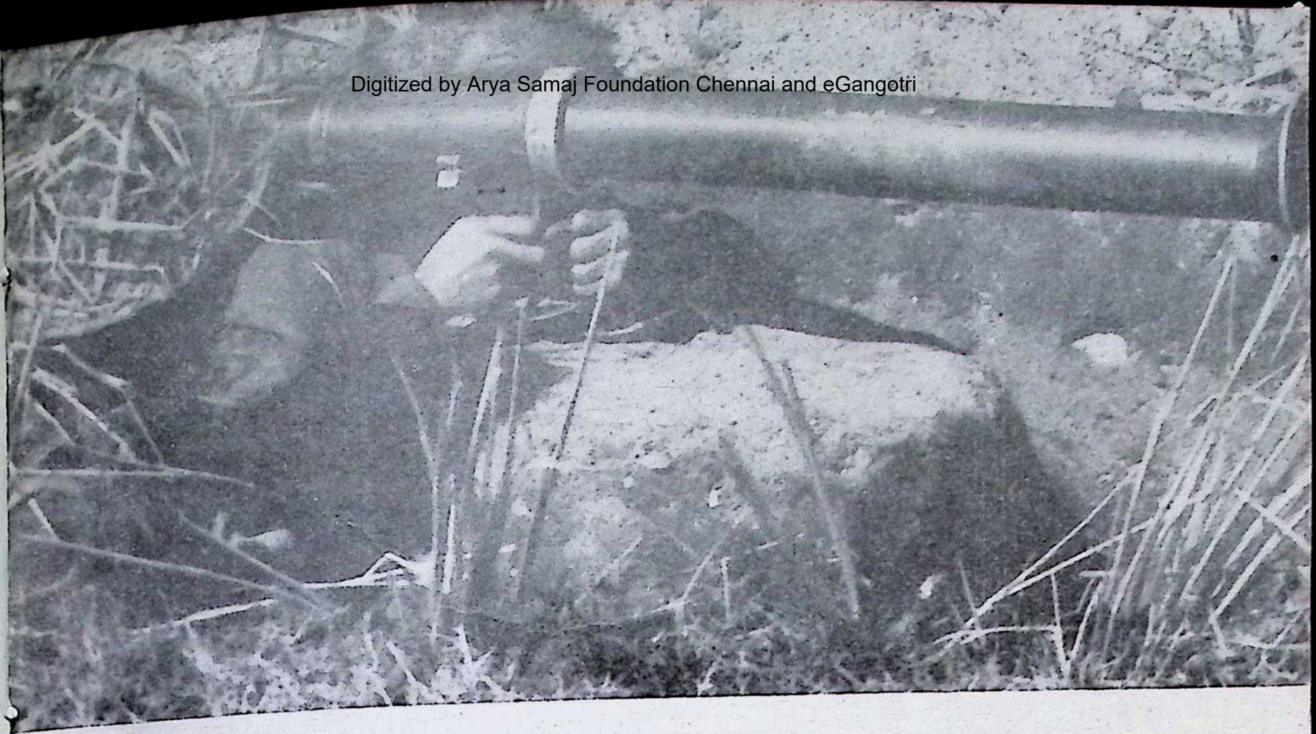

# तीसरा नेत्र

## संजय भट्टाचार्य

श्रौर कोई वस्तु, कोई घटना, कोई कारण नहीं बढ़ाता है मेरा क्रोध

श्रौर कोई स्थिति नहीं बनाती है मुझको दावानल
लेकिन, यह मेरी श्रपनी ही धरती—

लेकिन मेरी यह श्रपनी ही कविता
हरियाली से, सुगंधि से भरे हुए खेतों-खलिहानों की,
नगर, कारखानों, स्कूलों, नदियों की, मैदानों की—

एक प्रकृति-श्राकृति, श्राचार-विचारों से बँधी हुई
मेरी ये सारी कविताएँ



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और, प्राण की कविता मेरी यह अपनी ही धरती
मेरा क्रोध बढ़ा देती है
मेरी कविता में जैसे जलती हुई मशाल जगा देती है;

जब कोई जंगी वायुयान
भर देता है काले जहरीले धुएँ-कोहरे से मेरा आसमान,
जब कोई फौजी बूट
हमारी सीमाओं की बर्फानी घाटी का कोमल क्वाँरापन
रौंदा करता है,

जब कोई बमवार जहाजी बेड़ा
मेरे तीनों समुद्र की छाती पर अनिष्ट का काला धब्बा
बन कर छूने लगता है मेरे बन्दरगाह !

तो मेरी कविता की प्राण देश की यह धरती
मुझे बना देती है दावानल,
मेरी दोनों आँखें विस्फोटक ज्वालामुख बन जाती हैं;

मैं कवि, मैं गायक अपनी धरती का
नेत्र तीसरा बन जाता हूँ ।

बंगला से अनु० राजकमल चौधरी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तन के घाव, मन के भाव

नरेंद्र शर्मा

आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !
क्रोध से आँखें लहू-लुहान,
स्वप्न-आहत भारत-जन के !

सत्य का भीषण, भैरव रूप,
चतुर्दिक गूंज रही हुंकार !
शीश पर सूर्य, जेठ की धूप,
सत्य से पहला साक्षात्कार !

राग अंगारक का आरोह,
आग के कण, क्षण चिंतन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

क्षुब्ध सागर, विचलित हिमवान,
तप्त भूतल, त्रिमूर्ति धर देह,
कह रहे—उठ, भारत-संतान,
त्याग मिथ्या संशय-संदेह !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा ज्योति-भूमि की आज,
बज रहे हैं बाजे रण के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

पीठ पीछे अँधियाया कुआँ,
सामने शत्रु ठोकता जाँघ,
दृष्टि में घुमड़ रहा है धुआँ,
दुराग्रह आया सीमा लाँघ !

कहाँ हो, सत्याग्रह के धनी ?
यहाँ सब अंधे सावन के ।
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

अहिंसा महावीर का अस्त्र,
अहिंसा संतों का हथियार !
अहिंसा से हिंसा निःशस्त्र,
अहिंसा का बल अपरंपार !

किंतु हम अधिकारी हैं कहाँ—
दिव्य उस आत्मा के धन के ?
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

अहिंसा, माना, आज अशक्य,
क्योंकि हम प्राकृत-जन सामान्य !
बनें हम गांधी से चाणक्य,
सुरक्षित करने गृह-धन-धान्य !

दुग्ध से नहीं, रक्त से आज,
कृत्य पूरे हों तर्पण के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठे प्राणों में पावक-वेग,
जले बाहर रिपु, भीतर मोह !
हाथ में लिए दुधारी तेग,
नीर पर करे अग्नि आरोह !

गुँजाते चलें स्वर्ग का द्वार,
गीत केसरिया यौवन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

दुधारी मिली चुनौती हमें,
छिड़ गया है दुहरा संग्राम !
पाँव जिसके न युद्ध में जमें,
न ले वह भारत माँ का नाम !

कटे रिपु-सैन्य, हृदय का दैन्य--
पक्ष दो पावक पावन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

कहाँ वह पावक पावन आज ?
सुखी है स्वार्थ, दुखी परमार्थ !
कहूँगा कटुक सत्य निर्व्याज,
पूज्य सुविधा, गर्हित पुरुषार्थ ।

धूलि में मिले धवल आदर्श,
अश्रु हों जैसे निर्धन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

देखता हूँ मैं यह सुस्पष्ट--
कष्ट में है हर संज्ञाशील !
भूमि की मर्यादाएँ भ्रष्ट,
नहीं अब निर्मल गगन सुनील !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज अपमानित आत्मा लिए—
बीतते हैं दिन जीवन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

आधि घर में है, बाहर व्याधि,
ऊबता एकाकी कर्तव्य !
मची है अंतर्बाह्य उपाधि,
ऊर्ध्वरथ अग्नि न पाता हव्य !

मूक वाणी, उदास इतिहास,
हंस ज्यों उजड़े कानन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

छेकती हमें आसुरी शक्ति,
टेक पर मरे भूमिसुत वीर !
आज भी भोगों में आसक्ति ?
देश पर गिरी गाज गंभीर !

राजनीतिक दलदल के ग्राह,
शत्रु, मघवा के वाहन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

अर्थपति हैं अनर्थपति आज,
छत्रधर-क्षात्र-धर्म से हीन !
मनीषी करें दास का काज,
ब्रह्म-विद्या संकुचित मलीन !

स्वार्थ-सापेक्ष भाव-निरपेक्ष—
सभी सेवक हैं शासन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त के अश्रु बहाता हृदय,
प्राण घुटते पिंजड़े में बंद !
धमनियों का लय हुआ विलय,
मुक्त हैं बस केवल लय-छंद !

आज भारत का अंतःकरण,
रिस रहा है छलनी बन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

विगत गौरव का श्रीमुख म्लान,
लाज से गड़ा हुआ भवितव्य !
देवतात्मा वह खड़ा महान,
किंतु दिखता न हमें गंतव्य !

लड़खड़ा कर ही हों, पर क्या न
खड़े होंगे हम फिर तन के ?
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

जाग, ओ पौरुष पानीदार,
प्रकृति भारत की रही पुकार !
चुनौती दुहरी कर स्वीकार
अवनि-नभ में गूँजे जयकार !

देश की आत्मा पर तन वार,
देव बैरी कायरपन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

देखना है, यह भारत देश—
मात्र मिट्टी, कि शेष है राम ?
प्राण में आन अभी लवलेश,
या कि बस प्रिय हमको निज चाम ?



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत्रु के पाद-पीठ हिमश्रृंग,
या कि मंदिर नारायण के ?
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !

सिद्ध करना होगा ब्रह्मास्त्र,
शत्रु पर कर अंगारक-वृष्टि !
हाथ में शस्त्र, हृदय में शास्त्र,
दृष्टि में एक मात्र रिपु-दृष्टि !

बींधना हमें लक्ष्य दुर्लक्ष्य,
प्राण-शर देह-शरासन के !
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

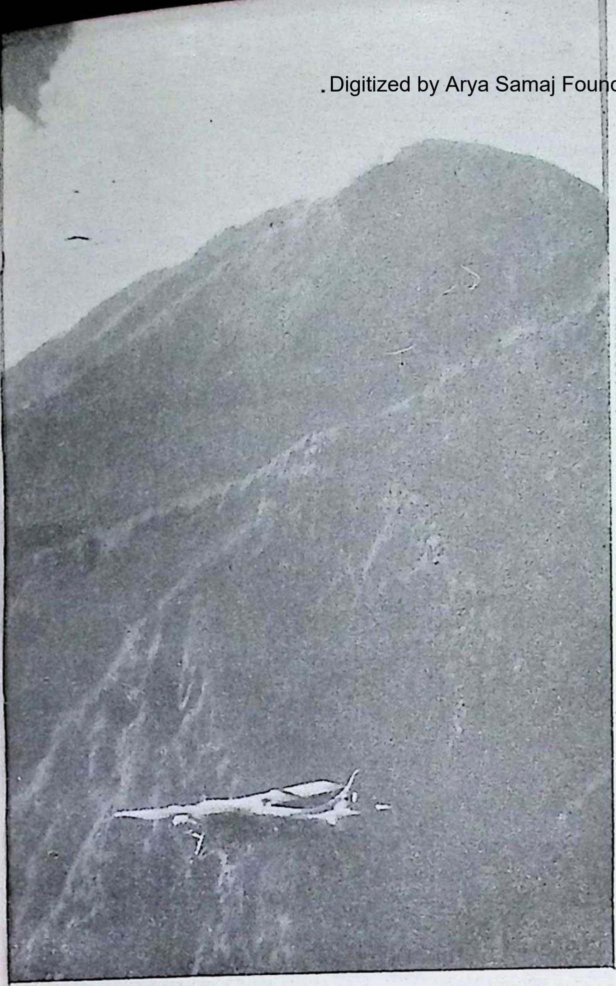

# अपराजितों का गीत

राजीव सक्सेना

(1)

मित्रता की सीमाएँ होती हैं हिमाचल सी
उल्लंघन अंगुल भर स्याह बादल के टुकड़े सा
एक कोने में उभर कर

अनंत आसमान भर देता है
वर्षा कर देता है तूफ़ानी घृणा की

अंतस्तल की स्निग्ध नदियों का जल
उफनेगा क्या होगा
ह्वांगहो के अंचल से पूछो

दोस्ती का हाथ कमल कोमल है
आँखों से लगाने पर
ढल जाते हैं इस्पात



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्पाती हौसले भी
आँखों में भट्टियाँ दहकने जब लगती हैं
पंजा शिकंजा है

रक्त का भय--क्या दिखाते हो
इसी रंग से रंग दिया है
अभी-अभी
धुंधला सा सवेरा
अंधेरा समुंदर पार पश्चिम में
यूँ ही नहीं जा छिपा

सत्य बड़ी शक्ति है
इसीलिए युद्धों से पहले एक सत्य की
हत्या की जाती है

और फिर शवों के अंबार खड़े करके
छिपाया जाता है अपराध

कितनी बार संहारा है सत्य को
कितनी बार मारा है मनुष्य को
किंतु सत्य अक्षर है
मानव अविनश्वर है

सत्य और मनुष्य दो हैं और एक है
सत्य के हाथों की ध्वजा पर लिखा है :
मनुष्यता

वह जो संकल्पों का जनक है हिमश्वेत
कोमल-कठोर मन
द्रवित और अदम्य, हज़ार-हज़ार दरों पर अभेद्य
अपराजेय प्रहरी हिमालय नाम है उसी का



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मल गंगा के नंगे हाथ एक जुट लहराते हैं
संगीनें टूट-टूट जाती हैं
संकल्पों की धारा काटे नहीं कटती
आओ, एक लहर बन जाएँ ऐ दोस्त

113553

(2)

वह हाथ जो शीत ताप से स्थितप्रज्ञ
संगीनें ताने खड़ा है संगीन चौकी पर
अपना जवान है ।

वह हाथ जो प्राणों का सारा रस सौंप कर
फ़सलें उगाता है हरे भरे जीवन की
अपना जवान है ।

वह हाथ जो फ़ाइलों के फ़ीते रग-रग से बाँधता है
जोड़ता है एक सूत्र सारी व्यवस्था को
अपना जवान है ।

वह हाथ जो घर-घर के स्नेही धागों को चुनकर
बुनता है स्वेटर बर्बरता के शीत के रक्षार्थ
अपना जवान है ।

वह हाथ जो शब्दों का शिल्पी है, गढ़ता है शौर्य-धैर्य
आत्मविश्वासों की जीवंत मूर्तियाँ काल-जयी
अपना जवान है ।

कहाँ नहीं है मोर्चा
कहाँ हो तुम
तुम्हारे हाथ कौन से हैं ए दोस्त
मेरे हाथ स्वीकारो



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मेरे हाथों की मिट्टी कहती है

## सदानंद रेगे

मेरे हाथों की माटी कहती है

मुझे हरी घास पर लोटना है,

मेरे रक्त का प्रवाह कहता है,

मुझे पहाड़ की फिरकनी घुमानी है,

मेरी भुजाओं का विद्रोह कह रहा है,

मुझे इन्द्र का धनुष चढ़ाना है,

मेरे प्राणों का संगीत कह रहा है,

मुझे चाँदनी से होड़ लगाना है,

मेरे आकाश में व्याप्त प्रकाश कहता है,

मुझे ब्रह्म का कमल तोड़ना है,

मेरे अहम् की राख कह रही है,

मुझे फिनिक्स का अंडा उबालना है !

मराठी से-अनु० दिनकर सोनवलकर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भग्न स्तूप : एक प्रतिक्रिया

जगदीश चतुर्वेदी

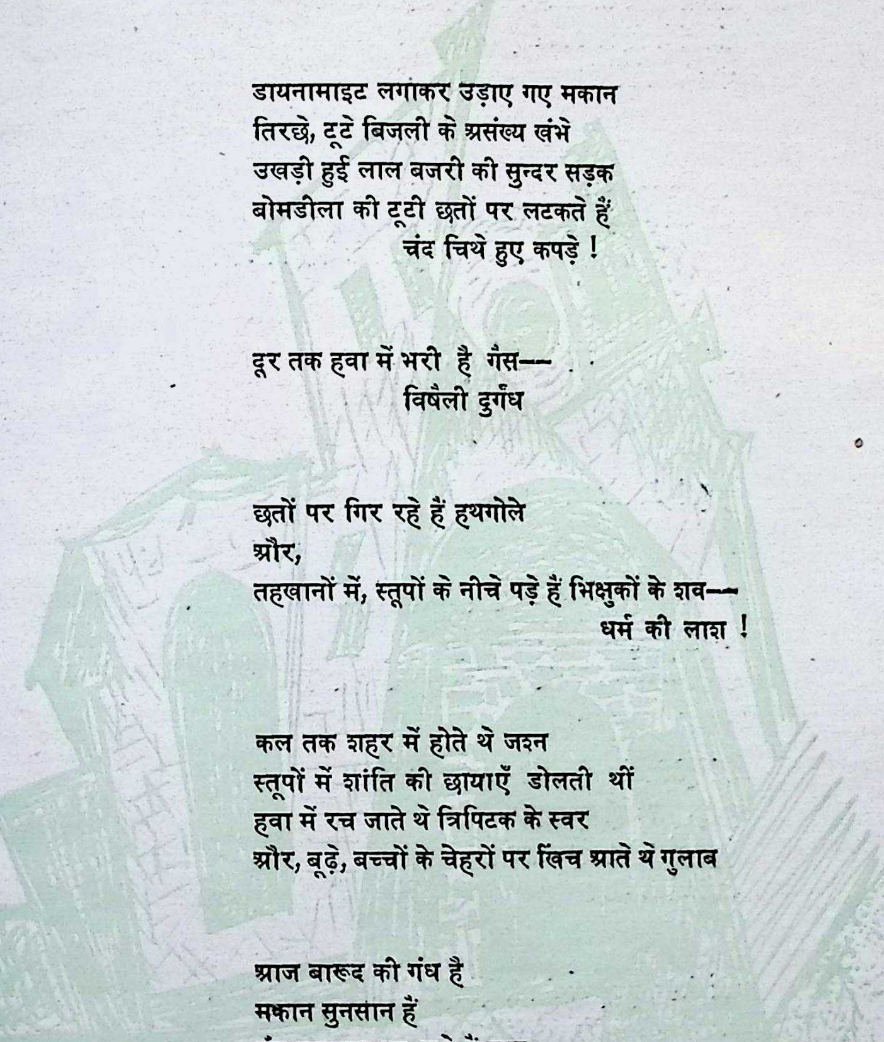

डायनामाइट लगाकर उड़ाए गए मकान
तिरछे, टूटे बिजली के असंख्य खंभे
उखड़ी हुई लाल बजरी की सुन्दर सड़क
बोमडीला की टूटी छतों पर लटकते हैं
चंद चिथे हुए कपड़े !

दूर तक हवा में भरी है गैस––
विषैली दुर्गंध

छतों पर गिर रहे हैं हथगोले
और,
तहखानों में, स्तूपों के नीचे पड़े हैं भिक्षुकों के शव––
धर्म की लाश !

कल तक शहर में होते थे जश्न
स्तूपों में शांति की छायाएँ डोलती थीं
हवा में रच जाते थे त्रिपिटक के स्वर
और, बूढ़े, बच्चों के चेहरों पर खिंच आते थे गुलाब

आज बारूद की गंध है
मकान सुनसान हैं
मुंह लटकाए हुए खड़े हैं स्तूप
और, भहराए से घूम रहे हैं चंद लावारिस कुत्ते––
इन्सान की दोस्ती पर घृणा की नजर डालते हुए !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज कितना उदास है हिमालय,
सारनाथ के स्तूप अवाक् देख रहे हैं

बुद्ध की आत्मा निश्चय ही काँप गई होगी
और रोया होगा ह्वेनसांग—
इतिहास का सत्य, आज झुठला दिया गया है।

बर्फ़ीली वादियों में घूम रही है शत्रुता—
जंगली सूअर सी शिकार के लिए उद्धत आँखें,
खंदकों में छिपकर निरीह बस्तियों पर
रात के अँधेरे में आग उगलती बाँहें।

घृणा से सिकुड़े हुए होंठ,
जैसे केवल पशुता ही धर्म रह गई है
पीले गुलाब के देश की !

तुम मित्र थे और हम तुम्हें देते थे प्यार और दर्शन
और आस्था;

तुम्हारी मित्रता का दम भरते थे

और शांत नदी में गहरे कहीं डूब जाती है जैसे नाव
ऐसे तुमने भुला दी है मित्रता !
तुमने बोमडीला के पहाड़ी कस्बे में बहाया है खून

नर्म हथेलियाँ तुम्हें कभी माफ नहीं करेंगी
तुम्हें कभी नहीं भुलाएगी
(तुम्हारे बर्बर, हिंसात्मक कृत्य को)
आने वाली पीढ़ी

मेरे दोस्त, तुम्हारी दोस्ती ऐसी उथली नदी मानी जाएगी
जिसमें नहीं समा पाया कभी भी प्यार
—मित्रता का अथाह सागर !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# युद्ध : एक जीवन-दर्शन के लिए

राजकमल चौधरी

एक बर्बर राजसत्ता से यह एक जीवन-दर्शन का युद्ध है ।

द्वार खुले रखोगे, तो बाहर की आग से घर जल जाएगा
अवरुद्ध करोगे, तो भीतर का कोहरा बन जाएगा
उन्मुक्त ज्वालामुख !

फिर, क्या करोगे ? क्या है उपाय ?
निर्मम तटस्थता से भी तो रंजित नहीं रहेंगे प्राण
काल क्षमा नहीं करता है
समय-रथ रुका नहीं रहता है
उनके लिए, जो हाथ पर हाथ धरे रहते हैं निरुपाय ।

अपनी पृथ्वी और अपने जल का
हवा का, उजाले का, जीवन का, पक्षधर बनना पड़ेगा हमें तुम्हें
अपनी स्वाधीनता--प्राण-सम्बल का !
विचार-प्रत्यंचा पर चढ़ाने पड़ेंगे निर्णय युद्ध के बाण
निर्मम तटस्थता से भी तो रक्षित नहीं रहेंगे प्राण ।
काल क्षमा नहीं करता है, रुका नहीं रहता है समय-रथ
एक बर्बर राजसत्ता से यह एक जीवन-दर्शन का युद्ध है ।

घर में रुके रहोगे, तो
यह धरती मरुभूमि, यह उपवन आदिम जंगल बन जाएगा
पत्थर बन जाएगी फिर यह अहिल्या
और कभी कोई मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं आएगा ।

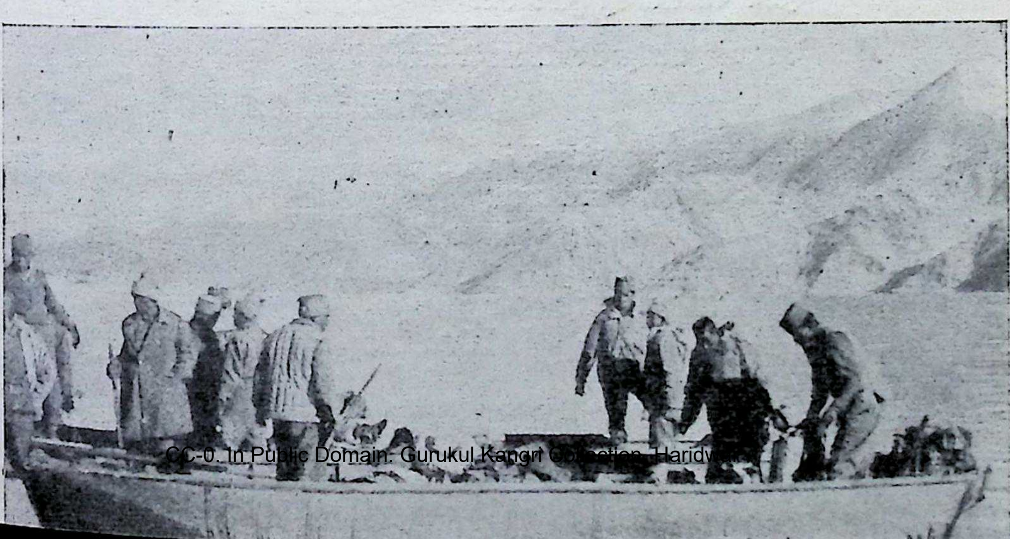

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

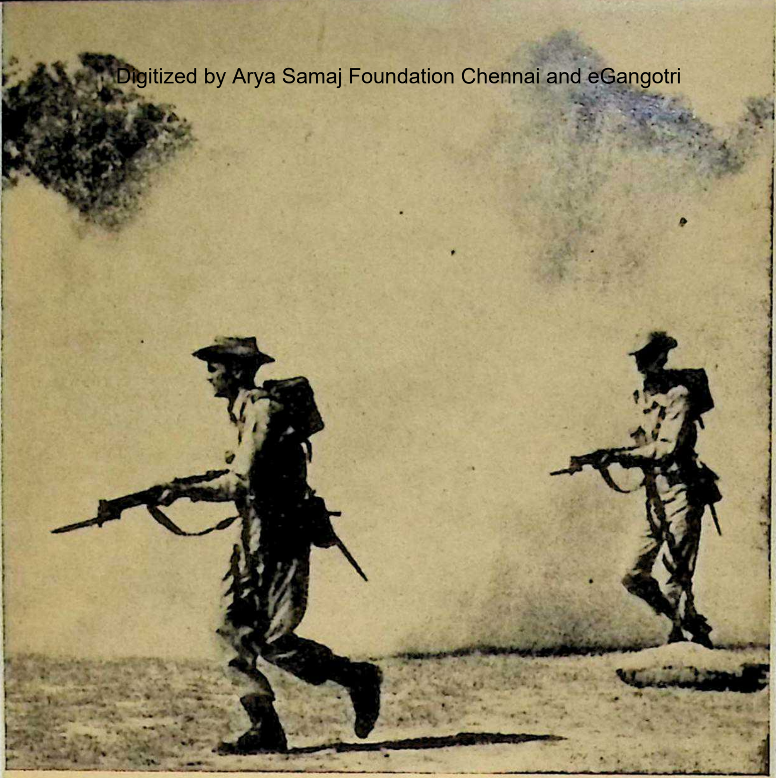

# वृक्ष

—स्वदेशरंजन दत्त

एक भी पत्ता तेरा गिरा न सकेगी दस्यु हवा
कितना ही भीषण हो शैतान उत्तरी पवन,
कितना ही बर्बर हो हिंस्र उन्मत्त रक्तपायी,
एक भी पत्ता तेरा नहीं दूँगा गिरने ।

मेरा रक्त है प्रवाहित तेरे प्रतिपात की शिराओं में
भूल गया ?

तेरे प्रत्येक पुष्प, फल की जड़ों में
है अभी भी पूर्वजों का उत्तप्त रक्त
भूल गया ?

एक भी पत्ता तेरा तोड़ने नहीं दूँगा ।

बँगला से अनु० : रामकिशोर द्विवेदी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

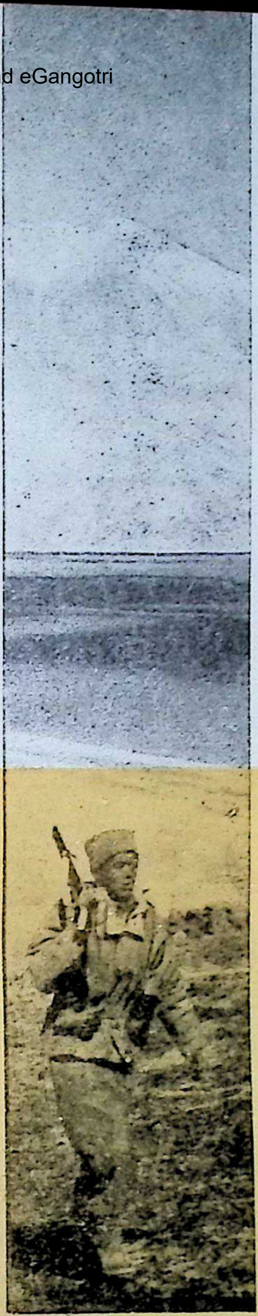

# मैं वह क्यों नहीं हुआ

जगदीश गुप्त

मैं वह क्यों नहीं हुआ
जिसने
हिम शिखरों की रक्षा में
पहला आघात सहा

मैं वह क्यों नहीं हुआ
जिसके घायल तन से
चौड़ी चट्टानों पर
प्रथम बार
किसी गर्म सोते सा——
रक्त बहा ।

मैं वह क्यों नहीं हुआ
जिसने अंतिम क्षण तक
रुंधती निःश्वासों से
केवल 'जय' शब्द कहा !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

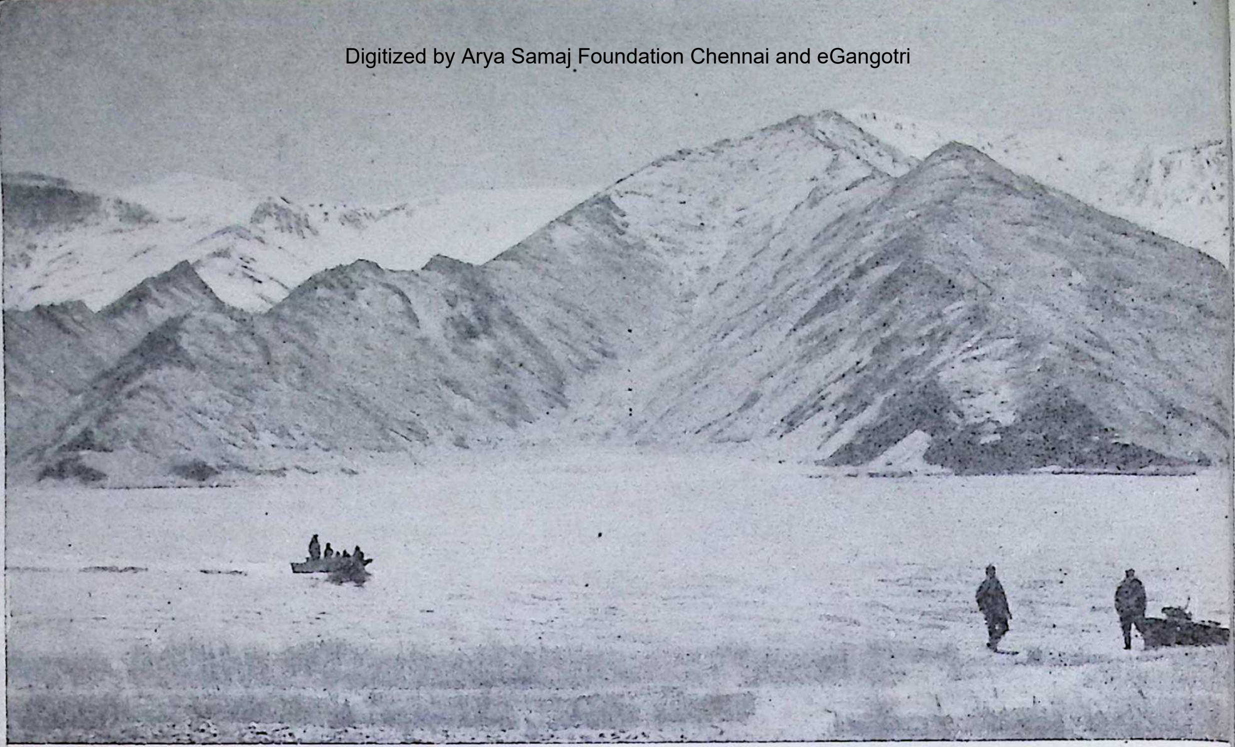

# भारत भूमि के लिए

—शांतिलाल ग्राहूजा

भारत माँ, मैं तेरा स्तवन करता हूँ
तुम्हारा रूप कितना प्रांजल ग्रौर ग्रकलुष है,
सत्य की रक्षा के लिए तुम ग्रचल हिमालय सी
ग्रपनी यशःपताका उड़ाती युगयुगों से मौन खड़ी हो।

तुम्हारी स्मृति पवित्रता ग्रौर साधुता से भर देती है
तुम्हारी पवित्रता की कांति कितनी ग्रलौकिक ग्रौर प्रकाशमय है
विश्व के कोने-कोने में तुमने शांति के संदेश भेजे हैं,
घृणा तथा युद्ध के विरुद्ध तुम ग्रविराम संघर्ष करती रही हो।

ग्रजेय प्रहरी की तरह हिमालय, तुम्हारी रक्षा में तत्पर है
तुम्हारी ग्रोर लोलुप दृष्टि उठाने का साहस किसी में नहीं है
दृढ़ माँस-पेशियों वाले जयी योद्धा गण
तेरे सम्मान को ग्रक्षुण्ण रखने, प्राणों की ग्राहुति देने को तैयार हैं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पवित्र भूमि से आक्रांता को खदेड़ने के लिए,
इस पवित्र यज्ञ में प्राणों की बाजी लगाने के लिए
सभी भारतवासी किसी भी हिचक या भय की भावना से परे
आत्म-बलिदान को हँस कर गले लगाने को तैयार हैं।

इस पवित्र भूमि के मैदानों तथा पहाड़ों के बीच
पावन गंगा की जलधाराएँ बह रही हैं
यह वह भूमि है, जहाँ पाप के अशुभ स्पर्श तथा
अधर्म की अपवित्र छाया कहीं नहीं पाई जाती।

इस भूमि पर तपस्वियों के गौरवमंडित मुख
एकांत तपश्चर्या में लीन साधना करते रहे हैं
आगत की अनिश्चयात्मकता को संतों ने जीता है
और जीवन के अनंत रहस्यों का पता लगाया है।

हमारे पूर्वजों ने अपने जीवन की श्रेष्ठतम निधि इसे सौंपी
अथक परिश्रम तथा यातना सहकर भी इसकी रक्षा की,
सत्य के जीवंत तत्त्वों के अन्वेषण में तमाम युग पुरुषों ने
अपने जीवन अर्पित कर दिए और सत्य पहचाना।

इसी भूमि पर कृष्ण ने गीता का अमर संदेश दिया
और स्वयं अर्जुन के अजेय रथ की बागडोर संभाली
युद्ध के लिए हताश अर्जुन को राजनीति का तत्त्व समझाया।
और बंधु-बांधवों के संहार को 'धर्मयुद्ध' की संज्ञा दी।

'बिना किसी पुरस्कार के अपने कर्तव्य को पूर्ण निष्ठा से करो'
प्राचीन ज्ञानियों ने इसे जीवन का रहस्य कहा है।
जीवन-संघर्ष में भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है,
पर आत्मा का अजेय व्यक्तित्व निरन्तर विकासशील है।

आत्मा का हनन करना किसी की भी सामर्थ्य नहीं
शरीर की हत्या की जा सकती है, उसे मिटाया जा सकता है,
किंतु शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी कुछ नष्ट नहीं होता।
आत्मा किसी नए शरीर में पुनर्जन्म ग्रहण करती है।

अँग्रेजी से अनु० : जगदीश चतुर्वेदी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जा रहे हैं सीमा की ओर

--दिनकर सोनवलकर

हम तो गीत गाते हुए,
अलख जगाते हुए,
जा रहे हैं सीमा की ओर।

ये टोली है मस्तानों की,
वतन पर मिटनेवाले दीवानों की।
सभी प्रांतों, जातियों के नौजवान हैं इसमें।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न कोई छोटा, न कोई बड़ा,
हरेक कंधे से कंधा मिला कर खड़ा,
फौलाद की तरह मज़बूत ।

आज जा पहुँचे हैं तुम्हारे गाँव में,
बूढ़े-बरगद की छाँह में,
पर समय नहीं है रुकने का,
वक्त है कम और काम हैं ज्यादा,
मंजिल है दूर और पथ में है बाधा ।

वैसे जानते हैं हम,
कि तुम बड़े प्यार से रखोगे हमें,

बूढ़ी माँ के हाथ से पीसे हुए आटे की,
और प्रिया के नरम हाथों से बनी,
गरम-गरम रोटियाँ खिलाओगे हमें,
जिन पर लगा हुआ होगा,
शुद्ध घी देहाती,
तुम्हारी आत्मीयता की तरह विशुद्ध !

लेकिन ये खानपान
ये रागरंग,
फिर होगा, लौटती बिरियाँ,
मगर लौटेंगे तभी,
अगर होंगे विजयी ।
अन्यथा दे देंगे प्राण,
लड़ते-लड़ते ।

आओ चलो,
तुम भी चलो,
सोचने-विचारने का नहीं है समय,



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस, मन में हो बलिदानी आग,
और प्राणों में अभय
ये तो अपनी-अपनी ईमानदारी की बात है,
सवाल है अपने-अपने एहसास का ।

इम्तहान होना है आज ही,
कि माँ के उपकारों को चुकाता है कौन,
और कौन मुँह छिपा कर रह जाता है मौन ?

तुम भी तो माँ के बेटे हो,
अब तुम्हीं बताओ,
सच्चे हो या कि झूठे हो ?

तो कस लो कमर,
और आ जाओ टोली में
खेलेंगे लहू की फाग
इस साल होली में ।

मोह मत करो भाई : इस कंचन काया का,
तोड़ दो बँधन : इस ठगिनी माया का,

ये रूठना मनाना,
ये जोड़ना घटाना,
फिर होगा, लौटने के बाद,

मगर लौटेंगे तभी,
अगर होंगे विजयी,
अन्यथा दे देंगे प्राण,
लड़ते-लड़ते ।

हम तो गीत गाते हुए,
अलख जगाते हुए,
जा रहे हैं सीमा की ओर ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन का प्रतिफलन है साहित्य और कथा-साहित्य उसकी अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण ! विश्व के महा-युद्धों ने संसार को बड़े-बड़े उपन्यासकार दिए और सीमा-युद्ध ने भारतीय जीवन को एक रोमांचक अनुभूति से भर दिया । कुछ कहानियाँ इतनी मार्मिक लिखी गईं कि हम हिमगिरि के श्वेत शिलाखंडों पर हुए रक्तपात का पर्यवेक्षण अत्यंत समीप से कर सके । भारतीय जीवन से अनुप्राणित, युद्ध की प्रतिक्रिया से उत्प्रेरित, यह चुनी हुई सात कहानियाँ, इस बात का समर्थन करेंगी । इन्हें परि-वार, सैन्य-जीवन, विदाई की सजलता, मृत्यु का आर्त-नाद आदि विभिन्न मानसिक व्यंजनाओं से संशलिष्ट खंड-चित्र कहा जा सकता है ।

# सात कहानियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# सुकून

—कमलेश्वर

किसी छावनी में औरत को देखकर थोड़ा ताज्जुब तो होता ही है, फिर वह उत्तर भारत की लग भी नहीं रही थीं। वह किसी रेजीमेंट का नम्बर पूछती-पूछती वहाँ तक पहुँच गई थीं। हवलदार ने उसे देखा तो न जाने क्यों मन पसीज आया। उसके खड़े होने में जो उदासी और थकन का भारीपन छाया हुआ था, उसे देखकर हवलदार से रुका नहीं गया।

न जाने क्यों हवलदार को लगा कि वह औरत भी अपने किसी भाई या होने वाले जीवन साथी की खोज खबर में ही आई है—अगर ऐसा न होता तो वह यहाँ क्यों आती? अभी कुछ देर पहले उसने उसे कँटीले तारों के उस पार वाले मैदान में राउटी के पास खड़े देखा था—फिर वह बैरक नम्बर दो के पीछे वाले अहाते से होती हुई इधर आई है और अब जैसे एकदम चकनाचूर होकर खड़ी हो गई है।

सुबह छावनी में बड़ी हलचल थी। टुकड़ियाँ मार्च करती हुई गई थीं और ट्रकों में लदकर स्टेशन चली गई थीं। जाने से पहले बहुतों ने अपने घरों को खत लिखे थे और चीजें भेजी थीं—

अकस्मात् यह सब वातावरण बदल गया था। सामने वाली बैरक में आधी रात तक जवान गाते और शोर मचाते रहे थे—आज सुबह उन्हें चला जाना था—दूर—उत्तरी सीमान्त पर—



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक क्षण के लिए हवलदार की नज़र फिर उस थकी हुई औरत पर टिक गई थी। उसने अपना हैंडबैग नीचे रख लिया था और पुलिया पर बैठ गई थी। सूरज की किरणें तिरछी होकर उसके ऊपर पड़ रही थीं। हवा बहुत सर्द थी। वह उसके पास तक पहुँचा तो पहले वह जरा-सा सहमी थी पर फिर प्रकृतिस्थ हो गई थी। उसने अपना हैंडबैग उठा लिया था और कुछ पूछने ही वाली थी कि हवलदार ने खुद ही प्रश्न किया था, 'कहाँ से आई हैं आप ?'

"तंजौर से।"

"किसी को खोज रही हैं ?"

'हाँ'—वह—उसकी आंखों में सहसा एक चमक सी आई थी। एक क्षण के लिए उनमें संकोच झलका था और फिर वह अपने को संभालते हुए बोली थी, 'उसका नाम है कैप्टन कृष्णमूर्ति—' और वह एक परचा निकाल कर कृष्णमूर्ति का नम्बर वगैरह सब बता गई थी, फिर बोली थी, 'कुछ पता ही नहीं लग रहा है—'

'उन्हें ही खोजने यहाँ तक आई हैं ?'

'हाँ !'

"कब आना हुआ आपका ?"

"आज सुबह —पता लग सकता है ?"

"मैं आपको पहुँचा दूंगा—तब तक आप उधर सिविल कैंटीन के पास रुक जाएँ। मैं अभी वापस आता हूँ—वैसे जहाँ तक मुझे पता है उनकी कोर शायद जा चुकी है।"

'जा चुकी है !' उसने बड़ी हैरानी से कहा था, "पर मुझे तो लिखा था कि बीस तारीख के क़रीब जाना होगा, आज तो बारह है—"

"जल्दी जाने का आर्डर आ गया होगा—तारीखें तो यहाँ कभी तय नहीं होतीं—हुक्म आने भर की देर होती है, और फिर इस वक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। दो घंटे के अंदर-अंदर कूच करने का मौका आ सकता है—अच्छा आप रुकिए, मैं अभी आता हूँ—" इतना कह कर हवलदार चल दिया था, "मूवमेंट का शायद कुछ पता चल जाए—"

वह उसे जाते हुए देखती रही थी। हवलदार की चाल में जो विश्वास और पौरुष था, वह उस क्षण उसे बहुत अच्छा लगा था—दूर होते हुए हवलदार का खाका भर जब रह गया था तो न जाने क्यों उसे मूर्ति और उसमें कोई फ़रक नज़र नहीं आया था—ऐसा ही लगा होगा मूर्ति !

छुट्टियों में मूर्ति जब आया तो कहता था—"जल्दी ही इधर आ जाऊँगा ! सदर्न कमांड में ! तब तक तुम डिप्लोमा ले लोगी और हम—"

एकाएक उसका ध्यान टूट गया था। भारी-भारी बूटों की आवाज़ पास आकर दूर होती जा रही थी। छावनी में अजीब सी खामोशी थी ! सामने की बैरकों के बाहर कुछ खाक़ी स्वेटर लटके हुए थे। बरामदे के खम्बों पर अखबारों की कुछ तस्वीरें चिपकी हुई थीं। धूप थी, पर सर्दी भी सख्त थी। रह-रह कर जैसे धूप सर्द हो जाती थी और बदन में फरहरी सी आ जाती थी।

बैरक के पीछे दूर मैदान में कुछ बोरे के पुतले टँगे थे। सुबह जब वह आई थी तो उसने देखा था—एक-एक जवान चीखता हुआ आता था, पुतले में संगीन भौंकता था और लौटकर चला जाता था—कुछ देर तक वह खड़ी देखती रही थी और यह भी भूल गई थी कि वह कृष्णमूर्ति को खोजने आई है—पता नहीं क्यों, उसे यह सब अच्छा नहीं लगा था, मन न जाने क्यों कसमसा उठा था—आँखों के सामने जीते जागते जवानों की आकृतियाँ आई थीं और उनके सीनों में भुँकती हुई संगीनों को वह बर्दाश्त नहीं कर पाई थी।

तभी पास से जाते हुए एक जवान ने टोका था, 'ऐ बाई, इधर क्या करता—जाओ-जाओ—'

और जब वह पूछती हुई इन्क्वायरी की तरफ जा रही थी तो चाँदमारी के धड़ाकों से उसका दिल दहल उठा था—किस दुनिया में आ गई है वह ?—उसने तो फ़ौज के जवानों को कावेरी नहर बनाते देखा था—बिहार में आई बाढ़ के वक्त अखबारों में छपी उन तस्वीरों को देखा था, जिनमें सेना के जवान बाढ़ को रोकने और हज़ारों आदमियों को निकालने में लगे हुए थे।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ति भी तो कभी लड़ाई की बात नहीं करता था—कहता था, "अपनी फौजों को लड़ना ही नहीं पड़ेगा—अपनी किसी से दुश्मनी नहीं है—"

"तब यह फौजी बाना क्यों पहने फिरते हो ?" उसने बड़ी हसरत से मूर्ति को देखते हुए पूछा था।

"यह भी जरूरी है—कभी ज़रूरत पड़ सकती है—अगले महीने हम लोग एक बड़ी नदी पर पुल बनाने जाएँगे—उधर की पब्लिक को जरूरत है—" मूर्ति ने बताया था। और वह उसे फ़ौजी वेश में देखती रह गई थी। जैसे एकाएक मूर्ति में बहुत अंतर आ गया था—उसकी बाहों में भरापन और तन में चुस्ती थी।

'पोंगल तक इधर आ जाऊँगा!' उसने कहा था—

तभी हवलदार के बूटों की आवाज़ से उसका ध्यान टूट गया था। आते ही हवलदार ने कहा था, 'रात को किसी समय कृष्णामूर्ति साहब की स्पैशल जा रही है—वह सीधे उधर ही पहुँचेंगे। इधर उनके बहुत से दोस्त लोग हैं, उनसे मिलने के वास्ते गए हैं।'

"तब हमें कहाँ पता चलेगा ?"

"मैं चलता हूँ आपके साथ। एयरफोर्स मैस में उनके एक साउथ इंडियन दोस्त हैं, वहीं गए होंगे—आइए, मैं ले चलता हूँ आपको। मिलवा तो आपको दूँगा ही—"

दोनों छावनी से बाहर की ओर चल दिए थे। हवलदार से वह कदम नहीं मिला पा रही थी पर मन में कुछ ऐसा उत्साह था कि वह दौड़ती सी चलती जा रही थी।

"कहाँ ठहरी हैं आप ?"

"कहीं नहीं। स्टेशन पर सामान है। मूर्ति मिल जाएगा तो किसी होटल या बोर्डिंग हाउस में इंतजाम कर देगा, यही सोचा था—"

"लाइए हैंडबैग मुझे दे दीजिए।" हवलदार ने उसे हाँफते देखा तो धीरे-धीरे चलने लगा, "आहिस्ता-आहिस्ता आइए—आगे से बस मिल जाएगी—"

इतने से समय में ही सूरज एकाएक छप गया था। अँधेरा उतरने लगा था। रास्ता सुनसान और ऊबड़खाबड़ था। सड़क के मुहाने पर कोहरा भरने लगा था। बिजली के खम्बे खामोश खड़े थे। एक मिलिट्री ट्रक भरभराता हुआ गुज़र गया था।

"मूर्ति मिल जाएगा ?"

'मिल तो जाना चाहिए—अच्छा यही होगा कि हम उन्हें स्टेशन पहुँचने के पहले ही मिल लें। स्टेशन पर मिलना नहीं हो सकेगा।'

'कोई सवारी नहीं मिलेगी ?'

"मिल जाएगी, आइए—"

कुछ दूर और चलने पर बस-स्टाप आ गया था। सर्दी में सिकुड़ते हुए दो-तीन मज़दूर बस का इंतज़ार कर रहे थे। मिलिट्री अस्पताल में रोशनियाँ जल गई थीं और सड़क के किनारे की गुमटी में छोटी सी दुकान की भट्टी के सहारे एकाध लोग खड़े थे।

"चाय तो नहीं पिएँगी ?" हवलदार ने पूछा था, पर उसने मना कर दिया था।

"किधर जा रहा है मूर्ति ?"

"पता नहीं।" हवलदार कह कर हँस दिया था, फिर उसकी परेशानी को देखते हुए बोला था, "शायद नेफ़ा की तरफ—उधर सैपर्स की ज्यादा ज़रुरत भी····"

और जब वे बस में बैठकर एयरफोर्स ऑफीसर्स मैस की तरफ आ रहे थे तो उसने पूछा था, 'आप लोग अभी यहीं रहेंगे ?'

'नहीं, हमें भी शायद एकाध दिन में कूच का हुक्म मिलेगा। शायद चौथे दिन हम भी लद्दाख की तरफ चल दें—' कहते हुए हवलदार ने गहराई से उसे देखा था।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप मूर्ति को जानते हैं न ?'

'हाँ—इत्तफ़ाक की बात है, नहीं तो यहाँ हजारों में किसी का पता नहीं चलता। हमारे गाँव का एक जवान उनकी टुकड़ी में है—इंजीनियर्स कोर में है। कभी मिलने जाता था तो मूर्ति साहब से भी मुलाकात हो जाया करती थी।'

'कहाँ है आपका गाँव ?'

'उत्तर प्रदेश में, आगरा के पास।'

'अजीब बात है न।' वह कह रही थी, 'कहाँ तंजौर और कहाँ आगरा ? कितनी दूर है मैस—'

हवलदार ने बाहर देखा। बस पार्लियामेंट के पास से गुज़र रही थी, बोला 'अब आ रहा है।'

'आपके बाल-बच्चे गाँव में हैं ?'

'हाँ, सब वहीं पर हैं। माँ, भाई, घरवाली—'

'कितने बच्चे हैं ?'

'तीन—' सुनकर वह एक क्षण के लिए चुप रह गई थी। तीन बच्चों का बाप लड़ाई पर जाने के लिए तैयार बैठा था। उसने नज़रें बचाकर हवलदार को पहली बार बहुत ग़ौर से देखा था। मज़बूत और खुरदरे हाथ—सर पर लगी हुई काली टोपी और तांबे जैसी खाल के नीचे तमकती हुई धमनियाँ। एकाएक उसका मन भर सा आया—इन्हें भी जाना होगा।

'घर से कोई मिलने नहीं आया।'

'अभी तो लौटे हैं हम पन्द्रह दिन पहले—सबसे मिलकर। क्या पता वापस आना हो या न हो।' हवलदार ने वैसी ही वज़नी आवाज़ में कहा था और उसे लगा था कि जैसे वह ममता-मोह से ऊपर उठ गया है पर न जाने क्यों उसकी अपनी आँखें गीली हो आई थीं।

'सर्दी बहुत है' हवलदार ने जैसे अपने मन की बात दबाते हुए यूँ ही कहा था।

'उधर पहाड़ों पर तो और भी सर्दी होगी—कैसे सहेंगे आप लोग।'

'उधर तो इतनी सर्दी है कि नंगे हाथ से लोहा छूते ही हाथ बेकार हो जाता है।'

'अखबारों में पढ़ा था कि अपनी फौज के पास ऊनी कपड़ों की बहुत कमी है।'

'हाँ, है तो, असल में यह तो किसी ने नहीं सोचा था कि पहाड़ों पर इतनी फ़ौज की इतनी जल्दी ज़रूरत पड़ जाएगी—हमले की उम्मीद तो नहीं थी ? इस हमले की वजह से सारी फ़ौज को जाना पड़ गया न।'

बस रुक गई थी। स्टाप देखते ही वे दोनों उतर पड़े थे। एयरफोर्स आफीसर्स मैस में कृष्णमूर्ति के दोस्त का कमरा बंद था। नीचे आकर हवलदार ने कोने पर टेलर मास्टर की दुकान में पहुँच कर पूछा तो पता चला कि अपने एक दोस्त के साथ कुछ देर पहले ही गए हैं। चौकीदार ने भी यही बताया था।

रात काफ़ी गहरी हो गई थी। सामने के गोल चक्कर के पास ही उन्हें स्कूटर मिल गया था। हवलदार उसे लिए दो जगहों पर और गया था, जहाँ-जहाँ उसे कृष्णमूर्ति के मिलने की उम्मीद थी।

'कहीं ऐसा न हो कि स्पैशल भी छट जाए।'

'स्पैशल आधी रात से पहले नहीं जाएगी ?' उसने कह तो दिया था पर उसका मन भी भीतर-भीतर आशंकित हो रहा था। वह खुद चाहता था कि किसी तरह कृष्णमूर्ति से उसे मिलवा दे। घर से चलने से पहले उसके अपने घर में ऐसी ही उखड़ी-उखड़ी बातें हुई थीं। ऐसे ही रह-रह कर आवाज़ में खामोशी गूँजने लगती थी। ऐसा ही असमंजस, धीरज और बेबसी थी सबकी आँखों में। चन्दर की माँ इतनी ही बात करती थी और फिर इतनी ही खामोश हो जाती थी। कुछ ऐसा था भीतर जो कोई कह नहीं रहा था—और यह भी नहीं कह रही है। अजीब दर्दभरा, बेबसी से छटपटाता हुआ धीरज था सबकी आवाज़ों में—

'वहाँ तो बहुत सर्दी होगी—' चन्दर की माँ ने भी पूछा था। एक हूक-सी उठी थी उसके दिल में और उसने बग़ल में उसे बैठे हुए देखा था। वह अंधेरे में ताक रही थी। उसकी आँखों में सब कुछ स्वीकार कर लेने जैसी वही मजबूरी थी।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोहरा और नीचे आकर भर गया था। सड़कों की बत्तियाँ ऐसी लग रही थीं जैसे उन पर रैपर चढ़ा हो—हवा तीर की तरह लग रही थी। उसने अपना पल्ला कानों पर लपेट लिया था।

मनहूस ख़ामोशी को तोड़ने के लिए उसने पूछा था, तो आप भी दो-चार दिन बाद चले जाएँगे ?

'हाँ।'

'कितना अजीब है यह सब—'

हवलदार हँस दिया था, 'आज़ादी की क़ीमत तो चुकानी ही पड़ेगी—अजीब तो है, पर है। और कोई रास्ता भी तो नहीं।'

'कैसा लगता है सोचकर ?'

'हमारी तो जिन्दगी ही यही है—' जितना अजीब आपको लगता है, हमें नहीं लगता।

वह धीरे से हँस दी थी।

'क्यों ? इसमें हँसने की क्या बात है ?' हवलदार ने पूछा था।

'आप सब एक ही तरह बात करते हैं,' उसे शायद मूर्ति की कोई बात याद आई थी ? और हवलदार को लगा था कि सब औरतें इतने ही भोलेपन से हँसती हैं। जो बात नहीं समझती, उसी पर हँस देती हैं।

स्टेशन आते ही वह लपककर मिलिट्री इन्क्वायरी काउंटर पर गया था। कुछ ठीक पता ही नहीं लग रहा था। उसे थोड़ा बुरा भी लगा कि उसकी वर्दी देखने के बाद भी वे लोग कुछ ठीक-ठीक नहीं बता रहे थे। आखिर उसने उस पार वाले प्लेटफार्म पर नज़र दौड़ाई। आख़िरी प्लेटफार्म पर एक स्पैशल खड़ी लग रही थी। फ़ौजी जवान खड़े सिगरेटें और चाय पी रहे थे।

'मैं ज़रा उधर देख आऊँ, शायद स्पैशल तैयार है।' उसने कहा और जब वह भी साथ चलने लगी तो हवलदार ने उसे धीरे से रोक दिया था, 'सिविलियन लोग उधर नहीं जा सकते। हम अभी आते हैं। अगर मूर्ति साहब मिल गए तो बुला लाऊँगा।'

'पर गाड़ी तो जाने को तैयार लगती है।'

'मैं अभी आया।'

'सुनिए।' उसने घबराहट में ही पुकारा, 'अगर वो इधर न आ पाएँ तो यह ओवरकोट उसे दे दीजिएगा और कह दीजिएगा कि यामिनी लाई है, तंजौर से आई है।' कहते हुए उसने हैंडबैग से एक ओवरकोट निकाल कर हवलदार को पकड़ा दिया था।

हवलदार पुल पर चढ़ गया था। उसका दिल बेतरह धड़क रहा था। काश! उससे एक मिनट के लिए मिलना हो पाता। उसकी नज़रें आखिरी प्लेटफार्म की ओर जाते हुए हवलदार का पीछा कर रही थीं—तरह-तरह के ख्याल आ जा रहे थे—धमकती पटरियों के पास खड़े हुए फौजियों में वह ज़रूर होगा—

बहुत साफ़-साफ़ नहीं दिखाई दे रहा था, फिर भी वह इतनी दूर से पहचान लेगी। रोशनी भी तो ऊपर से पड़ रही है—किसी का चेहरा साफ़ नहीं दिखाई देता—सिर्फ आकृतियाँ हैं—एक सी आकृतियाँ—जिनमें से किसी एक को अलग कर पाना मुमकिन नहीं।

लेकिन वह मूर्ति को ज़रूर पहचान लेगी। हवलदार की पहचान भी जैसे खोती जा रही थी। वह आखिरी प्लेटफार्म पर जब तक उतरा था तब तक अलग पहचाना जा रहा था, अब वह भी उन्हीं में एक हो गया था;—पर उसकी बाँह पर वह काला ओवरकोट उसे कुछ-कुछ अलग कर रहा था—

अभी यह ओवरकोट जिस दूसरी बाँह पर जाएगा—वही होगा मूर्ति। उसका मूर्ति। और तब मूर्ति दौड़ता हुआ यहाँ तक आएगा—न आ सका तो वहीं से हाथ हिलाएगा—

एक बार अनजाने में ही वह पुल पर जाकर फिर नीचे उतर आई थी। हवलदार इसी रोशनी के नीचे वहाँ से उसे खोजेगा और मूर्ति को इशारा करके बताएगा—'वह खड़ी है यामिनी।'

सख्त सर्दी के बावजूद उसका बदन बेहद गरम हो गया था। खून की रवानी बढ़ गई थी और माथे पर पसीना



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छलछला आया था। दूर खड़े हुए जवान सिगरेटें पी रहे थे—धुआँ कोहरे में लिपट-लिपट कर ऊपर भरता जा रहा था। ऐसा लगता था जैसे वे काले बादलों में लिपटे हों—तभी एक जवान फुर्ती से उसके पास से निकल गया—एकाएक लगा कि मूर्ति ही है—

उधर सैनिक कैंटीन पर खड़े जवानों में भी उसे मूर्ति की झलक दिखाई पड़ी—वह जिसकी पीठ और मुँह का जरा सा हिस्सा दिखाई पड़ रहा था—वह मूर्ति जैसा ही लगता था—

फिर एकाएक लपक कर जाते हुए एक फौज़ी की चाल से उसे लगा कि वही मूर्ति है—हवलदार भी अब तक खो गया था। अब तो ओवरकोट भी नहीं दिखाई पड़ रहा था।

स्टेशन पर भीड़भाड़ होते हुए भी अजीब सा सन्नाटा भरा हुआ था। हर चीज़ जैसे बेबसी में थकी हुई थी।

तभी हवलदार आया था, 'वह स्पैशल इस स्टेशन से नहीं छूटती।'

'तो कहाँ से जाएगी?'

'उसे पिछले स्टेशन से छूटना था—यहाँ से गुज़र चुकी है।' हवलदार की आवाज में बेहद मायूसी थी।

'अच्छा।' उसकी आवाज़ में जैसे कुछ भी नहीं था।

कुछ देर दोनों चुपचाप खड़े रहे थे। उसकी आँखों में रह-रह कर सैलाब आता और सूख जाता था। वह बिलकुल चुप थी। हवलदार भी कुछ नहीं कह पा रहा था।

सर्द हवा का एक झोंका आया और वह अपने हाथ मल कर दूसरी तरफ़ देखने लगी।

'आइए एक प्याला काफ़ी पी लीजिए—कुछ सर्दी कम होगी।' हवलदार ने कहा और वह चुपचाप उसके साथ-साथ चल दी।

काफ़ी पीते हुए भी दोनों चुप रहे। कोई बात ही जैसे नहीं रह गई थी। तभी प्लेटफार्म की घड़ी की ओर देखते हुए उसने कहा, 'बारह बज गए। सीओ से इजाज़त तो ले आया था—'

'आप अब चले जाइए—बहुत तकलीफ़ दी आपको।' वह बोली थी और उसकी आँखों में एकबार सैलाब फिर उमड़ा था।

बिना कुछ कहे ही हवलदार ने ओवरकोट उसकी ओर बढ़ा दिया था। वह कुछ भी बोल ही नहीं पा रही थी—बहुत कोशिश करके उसने धीरे से कहा था, 'लेते जाइए—आपको भी तो—'

'हाँ—' धीरे से वह बुदबुदाया भर था और यह नहीं जान पाया था कि आगे वह क्या कहना चाहता था।

तभी स्टेशन के भारीपन को तोड़ते हुए सीटी की थरथराती आवाज़ आई थी और एक गाड़ी खामोशी से सरक कर चली गई थी। उसने धीरे से कहा था, 'पता करलें, हमारी गाड़ी कब जाती है।'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी कहानी

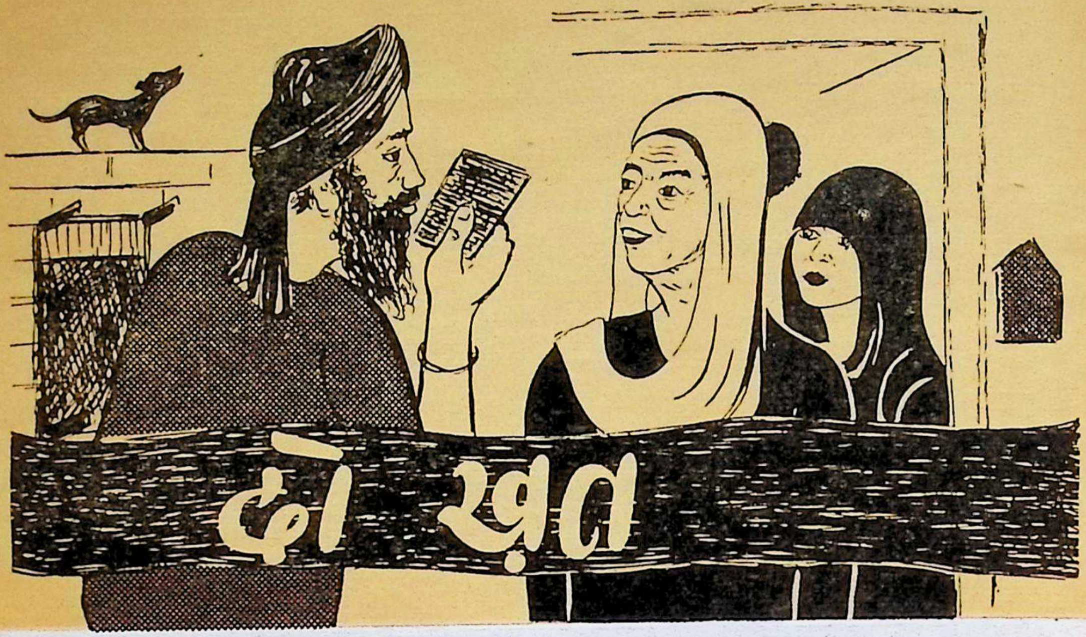


**—संतोख सिंह धीर**

**मैं** उनकी गली में से गुज़र रहा था कि ताई इन्दो ने ग्रन्दर से ग्रावाज़ दी, "ग्ररे बेटा संतोख सिंह ! यह चिट्ठी तो देखना ज़रा !"

"ग्रच्छा ताई !" मैंने रुकते हुए कहा ग्रौर ताई ने ख़ुशी-ख़ुशी द्वार में ग्राकर मुझे वह पत्र थमा दिया।

"ग्रमर का ही होगा शायद।" द्वार में ही खड़े-खड़े मैं लिफ़ाफ़े का किनारा चीरने लगा।

"लगता तो उसी का है, वाह गुरू की किरपा से टिकट तो लगी हुई है ना।"

"उसी का है।" मैंने कागज़ की तहें खोलते हुए बताया। हलके-हलके मुस्कराती रंजीत घूँघट सँवारती हुई सास की ग्रोट में ग्राकर खड़ी हो गई। सास ग्रौर बहू दोनों ही ग्रपने ग्रात्मीय के समुद्र पार के बोल सुनने के लिए बेचैन थीं।

कागज़ की चारों तहों पर संदेश बिखरे पड़े थे। मैं मन ही मन में चुपचाप पढ़ रहा था कि फिर बाद में सारा ख़त ठीक से सुना दूँगा। किंतु मेरे होंठो पर ग्रपने ग्राप ही मुस्कराहट खेल-खेल जाती। मेरी ग्राँखें पत्र पर थीं ग्रौर सास-बहू की मेरे चहरे पर। कभी-कभी मैं ग्राँख उठा कर देख भी लिया करता था। वे मेरे चहरे के बदलते भावों से ग्रपना ग्रनुमान लगा लेतीं। मेरी प्रत्येक मुस्कान उनको ग्रपने समुद्र पार के किसी प्रिय के बारे में एक ग्राश्वासन प्रदान कर जाती।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु जिस बात से मुझे रह-रहकर हँसी ग्रा रही थी, वह थी पत्र की भाषा ग्रौर लिखने का ढंग। न उर्दू न पंजाबी, ग्रौर था सब ही कुछ। पता नहीं कौन सी भाषा थी किन्तु मैं उसे फ़ौजी भाषा कह सकता हूँ। एक-एक बात को कई बार दुहराया हुग्रा था। भाषा के ग्रतिरिक्त पत्र का विषय ही ऐसा था जो मुझे खुल कर हँसने की ग्राज्ञा नहीं दे रहा था। खिचड़ी की-सी भाषा में मक्खन का-सा हृदय पिघला पड़ता था। लिखा था :

"लिखतम ग्रापका पुत्र ग्रमरसिंह, पठतम ग्रादर जोग मेरी प्यारी माँ जी !

दोनों हाथ जोड़ कर माथा टेकने के बाद खबर होवे जी कि यहाँ सुख ग्रानन्द है जी। ग्रौर कि ग्रापका सुख ग्रानंद सिरी वाह गुरू जी से नेक चाहता हूँ जी। ग्रौर कि चिरकाल से ग्रापका खत नहीं ग्राया है जी। क्या कारण है जी। ग्रौर क्या मेरे साथ नाराज़ी है जी ? दास समझ कर सिमा देनी जी।

"ग्रौर क्या भैंस व्याह गई है जी। दूध दही कितना है जी। बरखा-पानी का ग्रौर फसल-वाड़ी का किस तरह है जी। जीजा को कहना ग्रमरो को दो महीने छोड़ देवे। तीजों के दिन हैं जी। ग्रौर माँ जी का मन भी लगा रहेगा। जरूर ताकीद करके कहना होएगा जी, ग्रौर मेरी तरफ़ से फतह भी बुलानी जी।

"ग्रौर रंजीत कौर को यह खत जरूर सुनाना जी। उसको भी मेरी सत-सिरी ग्रकाल बोलनी जी। ग्रौर कि रंजीत कौर तुम मन लगा कर रहा करो। घर का काम किया करो। बूढ़ी माई जी को तकलीफ नहीं देनी जी। ग्रौर तुम भी ग्रपना जी लगा कर रखा करो। मैं जलदी ही छुट्टी ग्राऊँगा। पर ग्रभी साहब कुछ बताता नहीं। पता नहीं कब तक ग्राऊँगा।

"ग्रौर कि तुम बेफिकर रहना रंजीत कौर। मेरे को याद है। सैंडल ग्रौर पाऊडर ग्रौर सुर्खी भी मैं लाऊँगा। मुन्नी के झग्गे भी सिलाकर लाऊँगा।—"

मैंने पत्र पढ़ते-पढ़ते ग्राँख उठा कर देखा। रंजीत घूँघट में से मेरी ग्रोर मधुर दृष्टि से देख रही थी। उसकी मोटी काली ग्राँखों में उमंगें लहरा रही थीं। मेरे होंठों से बरसते फूलों को उसकी पलकें बड़े स्नेह से संभाल रही थीं, क्योंकि उनकी जड़ें समुद्र पार किसी सैनिक के हृदय में उतरी हुई थीं। मेरे होंठ उसे प्रिय लग रहे थे क्योंकि उनमें उसके प्रियतम का मन बोल रहा था।

"ग्रौर साथ ही रंजीत कौर तेरे को हुक्म करता हूँ, क्योंकि तुम पर मेरा ग्रधिकार है कि तू ग्राप बोल कर मेरे को खत लिखवाया कर। हाट वाले पंडित रामदयाल ताऊ से लिखवा लिया कर। शरम काहे की है इसमें। क्या तुम पर मेरा हक नहीं। खूब लिखवाया कर मन की गाँठें खोलकर। घर का हालचाल लिखवाया कर सारा। लंबी सी चिट्ठी होया करे कई पन्नयाँ की, जिसको मैं ग्रागे-ग्रागे पढ़ता जाऊँ ग्रौर पीछे-पीछे भूलता जाऊँ।

ग्राँचल में छुपा-छुपा कर रखती हुई हँसी रंजीत ग्रब संभाल न सकी। घुघरुग्रों की भाँति वह खुलकर छन-छना उठी। वह दुहरी चौहरी होती ग्रौर बल खा-खा कर हँसती थी। ताई इंदो ग्रौर ग्रड़ौस-पड़ौस के ग्रन्य बालक ग्रौर स्त्रियाँ भी पत्र सुन कर हँस रहे थे। दूर गए ग्रात्मीयों के पत्रों को गाँवों में लगभग सारा गली-मुहल्ला मिलकर सुनता है।

ताई इंदो बहू को हँसती देख कर मुग्ध हो रही थीं। वह प्रसन्न थीं कि दिन-प्रतिदिन गुम-सुम सी रहती बहू कभी-कभार पत्र ग्राने पर ही प्रसन्न हो लेती है। ग्रौर उसे इस प्रसन्नता में बहू की धारणा ग्रौर ग्रास्था उसके पुत्र की ग्रोर कुछ दृढ़ नज़र ग्राती थी।

"ग्रौर ग्रागे लिखा है ताई—" मैंने भी कुछ गम्भीरता से मुस्करा कर पत्र ग्रागे पढ़ना ग्रारम्भ किया।

"कि ग्रौर रंजीत कौर भाई-बिरादरी वालों की चालों का ध्यान रखना। किसी को ग्रपने घर का भेद मत देना। यह जमाना बड़ा खराब होता है ग्राजकल का। ग्रौर माँ जी को निवेदन होवे कि रंजीत कौर को उदास न होने देना। कि मैं जल्दी ही ग्राऊँगा। यह बात क्या है। चार साल भी तो बीते हैं पहले। ग्रौर खत



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उत्तर जल्दी देना जी। गरेवालों के किरपू को फतह बुलानी जी। संधुओं के बख्तावर को फतह बुलानी जी। माई निहाली जी को माथा टेकना जी। और बालकों को आशीरवाद जी। और सुनते और पढ़ते सब को वाह गुरू जी की फतह परमान होवे जी। खत का उत्तर शीघ्र देना जी।

आपका दास अमरसिंह

मैंने पत्र तह किया, लिफ़ाफ़े में डाला और ताई इंदो के हाथ थमा दिया, और मैं घर चला आया। किन्तु मैं सोच रहा था कि सैनिकों की पत्नियों को जीवन में कितनी-कितनी बार रंडापे काटने पड़ते हैं और सेना के सिपाही जीवन में कितनी बार गौना मनाते हैं।

उसके वाद कई बार अमरसिंह का पत्र आया। मैं उसी तरह सुनाता और कई बार उत्तर भी लिखता। प्रत्येक पत्र में आने के लिए आजकल किया होता। परन्तु अमरसिंह आ न सका। युद्ध काल में छुट्टी बड़ी कठिनाई से मिलती है।

दो वर्ष बीत गए। अमरसिंह का कोई पत्र नहीं आया। और न ही ताई इंदो ने मुझे कभी आवाज़ ही दी। अमरसिंह का पत्र पढ़ने की मुझे भी एक चसक सी पड़ गई थी, क्योंकि मुझे भी कभी-कभी सलाम आ जाता था। इसलिए मैं ताई इंदो के द्वार पर से ज़रा ठिठक कर निकलता। किन्तु मुझे ताई ने कभी आवाज़ न दी।

और यदि कभी गली-मुहल्ले से निकलते हुए ताई इंदो मुझे देख लेतीं तो कई बार यही पूछती : "अरे बेटा, कोई खबर ही सुना लड़ाई की, अब कैसे हैं। तू तो अखबार पढ़ता होगा।"

"अखबार वाले भी कौन-सा बिलकुल सच ही लिखते हैं ताई। इधर उधर की मनगढ़ंत वे हाँकते रहते हैं।"

"आ——अच्छा———?" ताई निरुत्साह होकर कहती, "यह कब हटेगी, कलमुंही!" और वह निराश होकर मेरे मुंह की ओर ताकने लगतीं।

"एक रोज़ तो हटेगी ही—कहो ताई कोई अमर की चिट्ठी आई?"

"अरे कहाँ बेटा! यही तो चिंता लगी हुई है।" ताई काफ़ी उदास थी।

"खैर कोई बात नहीं ताई। घबराओ नहीं। अवश्य आएगी चिट्ठी। एक तो युद्ध के कारण परदेश डाक आती जाती नहीं है आजकल, बस दो-एक महीने तक समुद्र के सारे मार्ग खुल जाएँगे। फिर आएगा अमरसिंह का पत्र।"

"लो—दो महीने भी हुए।" ताई को मानो मेरा विश्वास न हो रहा हो।

"जीते जी को सभी कुछ ताई।"

और मैं उसी तरह के आश्वासन देकर ताई के पास से चला आता। वह मेरी ओर दूर तक उखड़ी दृष्टि से देखती रहती मानो उसे मुझ से यह शिकायत हो कि अब मैं उसे पत्र सुनाकर प्रसन्न करने की अपेक्षा केवल टाल-मटोल करके ही कन्नी काटना चाहता हूँ।

वैसे भी ताई इंदो वहम बहुत मानती थी। छोटी-छोटी बातों के भी शगुन विचारती रहती। घर से बाहर जाते समय यदि लकड़ियाँ, उपले या ब्राह्मण या नंबरदार मिल जाता तो तुरन्त वापस लौट जातीं। साँझ के समय कोठे की छत पर मुँह उठा कर रोते हुए कुत्तों को दूर से दबकाती हुई वह कई बार कहतीं, "इस कलमुँहे अंगरेज ने अभी न जाने क्या करना है। रोज़ झाड़ू खड़ी रखता है।"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"संसार का काल है मां ! ये कुत्ते जो रोज इतना रोते हैं—।" कभी-कभी रंजीत के मन का भय भी साथ ही बोल पड़ता ।

अब मैं जब कभी उनके घर के सामने से निकलता तो उनकी, गली की ओर झाँकती, सलाखों वाली खिड़की में से कई बार मेरी दृष्टि रंजीत पर भी पड़ जाती । और द्वार पर से निकल जाने तक वह मुझ से घूंघट भी कर लेती । और मैं अगली खिड़की को भी छोड़ जाता । किन्तु रंजीत के उस काने घूंघट में से भी, मैं देखता, कि उसकी काली आँखों में चाहे अब वह उमंग नहीं है, किन्तु वे रंग-बिरंगे सपनों से भरी अवश्य पड़ी हैं । घूंघट की ओट में उसकी आँखें कल्पना में अवश्य कोई सुहाना दृश्य देख रही होतीं ।

"——————लहरों को चीरते हुए जहाज़ में आएगा—वर्दी पहनी होगी—काली काली दाढ़ी और तीखी नोकदार पगड़ी—पेड़ के तने सा मेरा बाँका——बिस्तर, झोला, कुप्पी, बिल्ले ! कितना सामान होगा— मैं आप चली जाऊँगी स्टेशन पर—कोई ऐब थोड़े ही है यह—मैं तो झोला देखूंगीं पहले—सैंडल, पाऊडर, सुर्खी— एक बार तो मेम बन कर दिखा देना है मैंने भी—सारी गली चकित रह जाएगी—धगड़-धगड़ करता फिरेगा जब बूटों से धरती हिलाता—मैं भी फिर किसी की लेवाल नहीं—मुन्नी भी उस के गले में बाहें डालकर चिपट जाएगी । और मेरी झूठमूठ की शिकायतें करेगी—मैं भी तो उसे अपना दुख-सुख कहूँगी—"

कई बार ताई इंदो जब घर में नहीं होती थीं अकेली रंजीत के घर में होते मुझे जाने में कुछ हिचकिचाहट होती । किन्तु मन में अवश्य यह इच्छा होती कि अमरसिंह के पत्र की बात चला कर बात-बात में रंजीत को भी कुछ आश्वासन दे आऊँ । अंत में एक दिन में पाँव मलते-मलते घर के अन्दर चला ही गया ।

"भई कोई अमरसिंह की चिट्ठी पत्तरी नहीं आई रंजीत ?"

"कोई नहीं आई भाई जी ।" घूंघट की कन्नी पकड़ कर वह मेरे पास कुछ मुँह घुमाकर खड़ी हो गई ।

"खैर, कोई बात नहीं, आ जाएगी । आजकल रास्ते बंद हैं । और तू भी इतना ख्याल न किया कर अधिक, रंजीत ।"

"नहीं जी——ख्याल करने से क्या बनता है—मैं तो कुछ नहीं ख्याल करती, मुन्नी लग जाती है कभी-कभी याद करने—तो मेरा भी मन——"

"बालक है——डाँट डपट न किया कर अधिक——ताई कहाँ गई हैं ?"

"खेत की ओर गई हैं जी सबेरे से ।"

"अच्छा, अच्छा ।"

इतना-सा आश्वासन देकर मैं चला आया । और फिर कई बार मैं इसी तरह की बातें अब बिना हिचकिचाहट कर लेता था ।

कोई दो महीने बाद मैं अपनी बैठक में बैठा एक दिन समाचार-पत्र पढ़ रहा था कि रंजीत की लड़की आई और खुशी-खुशी कहने लगी :

"ताऊ जी, तुझे मेरी अम्माँ बुलाती हैं ।"

"अच्छा री, चल तू, मैं आ रहा हूँ । क्या काम है ?"

"यह तो मुझे पता नहीं ।"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा तो फिर चल। मैं अभी आया थोड़ी देर में।"

"अभी आ जाना, ताऊ जी!" कहते हुए वह चली गई।

जब मैं घर गया तो ताई इंदो द्वार में लिफाफा लिए खड़ी थीं, और बड़े चाव से उसी तरफ उसके पीछे ओट में रंजीत। बड़े स्नेह से खुशी-खुशी ताई मुझे कहने लगी:

"देख तो बेटा खोल कर ज़रा!"

"अमर का ही होगा शायद।" द्वार में ही खड़ा-खड़ा मैं लिफ़ाफ़े का किनारा चीरने लगा?

"लगता तो उसी का है, वाह गुरु की किरपा से, टिकट तो लगी हुई है ना।"

"उसी का——है।" मैं ठिठक कर रह गया, "ना——नहीं।" बहुत ही धीमे स्वर में अपने आप से मैंने कहा।

मेरे पाँवों के नीचे से धरती खिसक गयी थी। मैं कैसे शब्द वापस लूँ। क्या कहूँ? मेरी आँखें पत्र पर थीं और सास-बहू की मेरे चेहरे पर। वे बड़ी बेचैनी से मेरे होंठों पर मुस्कराहटों की प्रतीक्षा कर रही थीं। पूर्ण स्नेह से रंजीत की आँखें मुझे विश्वास दिला रही थीं कि वे तुरंत मेरे होंठों को पहले से भी अधिक स्नेह भरी दृष्टि से देखेंगी। उनके हृदयों में एक उत्कंठा बढ़ती जा रही थी; किंतु मैं उनकी पकी हुई खेती पर बम फेंकने वाला था। उन्होंने मुझे प्रसन्नता और आश्वासनों के लिए बुलाया। किंतु मैं उनका घर उजाड़ करने वाला था।

"क्यों क्या बाँचने में नहीं आता बेटा? काहे में हैं?"

"बाँच रहा हूँ ताई——अँग्रेजी में है।" मेरा स्वर मानो मेरा साथ छोड़ता जा रहा था।

"तो फिर——क्या लिखा है?" वह चकित-स्तंभित सी मेरे मुँह की ओर देख रही थीं। रंजीत मुझे ताई के दरवाजे में एक पीपल लग रही थी और मुन्नी एक पर्वत।

"किस की है? हैं? कुशल तो है?" ताई पूछ रही थी जैसे किसी शत्रु से तकरार कर रही हो।

"कमांडर ने——खबर दी है——हम को——",

"अरे कैसी खबर?" ताई को जैसे डंक लगा हो। उसकी आँखें फट कर चौड़ी हो गई थीं।

"लिखा है।" मैं बहुत कठिनाई से बोला।

"माई इन्द्र कौर!

तुम्हारा पुत्र अमरसिंह, सिपाही नम्बर 506179 मोर्चे पर छाती में गोली लग जाने से——"

धाड़-धाड़ ताई ने अपनी छाती पीट डाली। रंजीत अपने बाल नोचती दीवारों से टक्करें मार रही थी। घर की दीवारें हिल गईं। गली में भूचाल आ गया। चीख, पुकार, रोना-पीटना!

घर की छत पर कुत्ते मुँह उठा-उठा कर रो रहे थे।

अनु: के० कुमार



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी कहानी

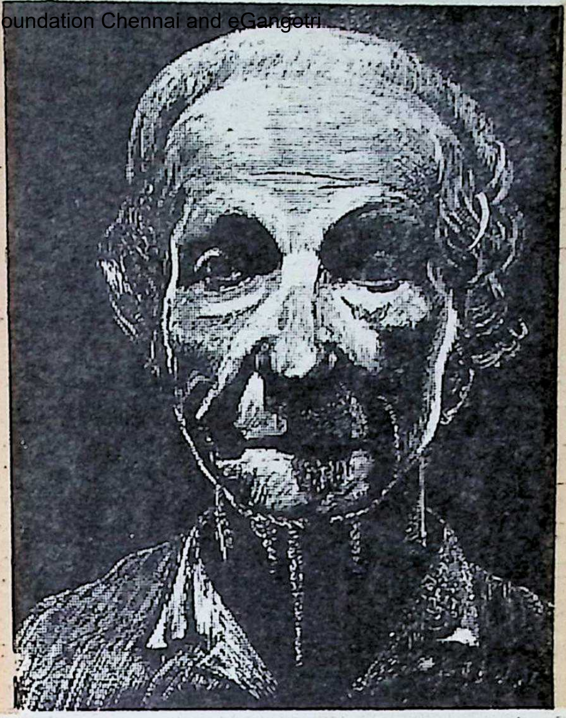

# माँ

स्टीपेन ज़ोरयान

हमारी पड़ोसिन "आंट मार्गरेट' दुबली-पतली, झुकी हुई बुढ़िया है। युद्ध के पहले वह अक्सर बीमार रहा करती थी। उन दिनों वह शायद ही कभी घर के बाहर निकली हो। घर पर रहकर भी उसने गृहस्थी की झंझटों को अपनी पुत्र-वधू के हाथों सौंप देने की बात पर ध्यान न दिया। दुशाले को कंधों से लपेट घर की दीवार से चिपट कर वह बीमार मुर्गी की तरह धूप लिया करती थी। संसार से और जीवन से जैसे उसे विराग हो गया था, किसी भी वस्तु का मोह उसे न रह गया था।

पर, यह सब दिखावा था। यों घर की किसी भी बात में वह हस्तक्षेप नहीं करती थी तथापि चिंता की एक ज्वाला उसके हृदय में सतत् प्रज्वलित रहती। चिंता थी तो अपने एकमात्र पुत्र एवाग के लिए जो विवाहित था, दो बच्चों का बाप था पर माँ की आँखों में बच्चा ही था। एवाग को काम से लौटने में ज़रा भी देर हो जाती थी तो वृद्धा बेचैन हो उठती—'मेरे बच्चे को देर हो रही है।' खिड़की से लगकर वह अधीरता से उसकी राह देखा करती। कभी सिर निकाल आते-जाते पड़ोसी से पूछ बैठती—'तुमने मेरे बच्चे को देखा है?' जब एवाग वापस आ जाता तब खुशी के कारण उसके चेहरे की सख्त झुर्रियाँ मुलायम हो जातीं। सिर से पैर तक अपने बच्चे को देखकर उसकी आँखों से, उसके होंठों से और उसके हाव-भाव से क्षण-भर में ही मार्गरेट सब कुछ भाँप लेती। एवाग की हर निगाह, हर कदम और हरएक हलचल को माँ ने इस खूबी से पढ़ रखा था कि बिना बोले-चाले ही वह उसके भीतर की सारी हालत सही-सही जान लेती थी। फिर भी एवाग के भरपेट भोजन कर लेने तक मार्गरेट की चिंता कम नहीं होती थी। सुबह खाली पेट एवाग का बाहर निकलना वृद्धा को गवारा नहीं था। सर्दी के दिनों में माँ इस बात का पूरा ख्याल रखती थी कि एवाग गर्म कपड़ों से ढँका रहे। जब वह कहीं बाहर जाने को होता तो नाश्ता रखे बिना, यह जाने बिना कि उसके साथी कौन होंगे, वह कितनी देर तक बाहर रहेगा और कब लौटेगा, वृद्धा को शांति नहीं मिलती थी।

हर हफ्ते, एक-दो दिन के लिए बुढ़ापे की कमज़ोरी के कारण खाट पकड़ने पर बाध्य करने वाली बीमारी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की परवाह न करके, बिस्तर पर लेटे-लेटे वह एवाग के विषय में चिन्तित रहा करती थी—'उसने चाय ली ? कुछ खाया-पिया ? उसे किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं ?' उन कठिनाई के दिनों में वह इस बात से और चिन्तित हो उठती थी कि वह शीघ्र ही मर जाएगी और एवाग अनाथ हो जाएगा। उसी क्षण वह निश्चय करती कि अपनी पुत्र-वधू से एवाग की पूरी देखभाल करने की बात कहेगी। कहेगी, कि उसे जो कुछ भी चाहिए फ़ौरन दिया जाए और जब वह चाहे उसी वक्त दिया जाए। उसकी अंतिम इच्छा यही थी कि उसके मृत चेहरे पर एवाग मुट्ठी भर धूल फेंक दे और बस। तब वह शांति प्राप्त कर सकेगी।

'ईश्वर मुझे उस दिन तक जीने दे!'

युद्ध आरंभ हुआ। औरों के साथ एवाग भी मोर्चे पर जाने के लिए तैयार हुआ। संभव है आप सोचें कि इस धक्के से बुढ़िया मार्गरेट की जीवन-लीला समाप्तप्राय हो गई होगी अथवा उस पर पागलपन सवार हो गया होगा—पर ऐसा कुछ भी न हुआ। यह मालूम होते ही कि उसका पुत्र सैनिक बन गया है उस पर जादू का-सा असर हुआ—जैसा बच्चे पर खतरा आ जाने से ईगल-माँ पर हुआ करता है। आंट मार्गरेट तनिक भी विचलित नहीं हुई। यह जानकर कि सैनिकों की टुकड़ी दूसरे ही दिन रवाना होने वाली है, अपनी सारी शक्ति से वह एवाग की तैयारी में जुट गई। आप कल्पना नहीं कर सकते, उसने कितनी सारी चीज़ें उसके बैग में बंद कीं—एक मुर्गी, कुछ अंडे, फल, ठंडा मांस और ऐसी ही बहुत-सी चीज़ें। नमक, मिर्च और मसाले रखना भी वृद्धा नहीं भूली। फिर उसने एवाग का सन का कपड़ा धोया, सुखाया और सुइयों और तागे के बंडल के साथ उसे रखा ताकि कपड़े फटने पर एवाग स्वयं ही उनकी मरम्मत कर सके। और यह सब वह एक ही रात में कर सकी! कभी बाहर न निकलने वाली बुढ़िया दूसरे दिन बड़े सवेरे रेलवे स्टेशन के लिए रवाना हुई, अपनी पुत्र-वधू के साथ, अपने इकलौते बेटे को विदा करने।

मुमकिन है, आप ख्याल करें कि आंट मार्गरेट ने शांति की सांस ले अपने बीमार जीवन को पहले की तरह किसी तरह घसीटना शुरू किया होगा—क़तई नहीं! एवाग की स्त्री भी काम पर जाने लगी और बुढ़िया ने सारे घर का काम-काज अपने हाथों में ले लिया। रसोई बनाना, चीज़ों को क़रीने से सजाकर रखना, सफ़ाई करना और स्कूल से लौटते हुए एवाग के बच्चों के लिए स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर भोजन तैयार करना—ये सारे काम उसने फिर अपने हाथ में ले लिए।

यह सब करते हुए भी बुढ़िया प्रसन्न रहती और इससे सबको बड़ा ताज्जुब होता। वही मार्गरेट जो रास्ते पर क़दम रखते ट्राम और मोटर गाड़ियों से डरती थी—हाथ में टोकनी लटकाए हमेशा कुछ-न-कुछ सोचती हुई, बाज़ार की तरफ़ तेज़ी से निकल जाती थी। कभी वह अपने-आपसे बात करती, शायद वह अपने प्यारे एवाग से ही बात करती थी। उसका कोई समाचार अभी तक उसके पास नहीं पहुँचा था। वह कहाँ है? किस शहर में? उसे खत कब भेजेगा?

'उसका एक खत आ जाए। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। चाहे वह कितनी भी दूर हो, पहाड़ों पर ही सही!'

आखिर बहुत इंतजार के बाद जब बेटे का खत आया और उसे मालूम हुआ कि वह कहाँ है, तब खुशी से चिल्लाकर मार्गरेट ने अपना जी हलका किया। फिर वह सोच में पड़ गई कि कौन-सी बहुत बढ़िया चीज़ वह अपने बच्चे को भेजे। वह उससे बहुत दूर था और उसकी अनुपस्थिति उसे डरावनी लगती थी। उसने सोच निकाला। वह मेवे का पार्सल उसे भेजेगी।

जब पहला पार्सल भेजा गया तब आंट मार्गरेट के लिए एक काम और बढ़ गया। एवाग का पता मालूम होते ही उसने कई बार एवाग की पसंद की मिठाइयाँ उसे भेजीं। पड़ोसियों को अपनी चाची की इस विचित्र शक्ति पर बड़ा ही आश्चर्य होता था। लगातार मेहनत ने उसकी कमर सीधी कर दी। वे पूछा करते कि बूढ़ी चाची एवाग को ऐसा क्या भेजती है कि उसे बार-बार पोस्ट आफ़िस भागना पड़ता है?

—"कुछ भी तो नहीं, थोड़े फल या और जो भी हाथ आ गया।"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—"और वह भी इतना सारा ?"

—"मैं चाहती हूँ और ज्यादा भेजूँ। यदि उसके कुछ साथी वहाँ हुए तो यह ठीक नहीं होगा कि वह अकेले खाया करे और वे उसका मुँह ताकें—"

फिर सर्दी का मौसम आया। मार्गरेट ने एवाग के लिए ऊनी कपड़े बनाने शुरू किए। ऊनी जाकेट, मोजे, दस्ताने। वह बुनने बैठती तो उसे मालूम होता, एवाग अकेला नहीं है। सेना में सभी लड़के एवाग के समान हैं। वे भी माँ के बच्चे हैं। उन्हें भी सर्दी काटनी है। उन सबको ऊनी कपड़ों की ज़रूरत है। उस दिन के बाद से एवाग के साथी मार्गरेट के लिए एवाग के ही समान प्यारे हो गए।

जब पार्सल भेजने का दिन आया तो एवाग के कपड़ों के सिवा बूढ़ी ने उसी संदूकची में एक जोड़ी मोजे, एक जोड़ी दस्ताने, अपना एक पुराना स्वेटर और अपने लिए तैयार की हुई एक जैकेट रख दी। सोचा, एवाग इन कपड़ों को अपने उन साथियों में बाँट देगा जिनके पास गर्म कपड़े न होंगे। एवाग की पत्नी से उसने यह आदेश अपने पुत्र को लिखवाया और पत्र अपने हाथ से पार्सल में रख दिया।

पार्सल जब पोस्ट आफ़िस पहुँचा तो देखा गया कि इस बार एक बड़ा संदूक एवाग को भेजा जा रहा है। इसे भेजकर मार्गरेट ने शांति का अनुभव किया। उसे बहुत प्रसन्नता हुई और एक भारी बोझ उसके सिर से उतर गया। यह बात उसे बहुत दुःख देती थी कि वह अधिक नहीं भेज पाती। उस रात जैसे उसका मन पार्सल के साथ ही चला गया। उसने अंदाज लगाया कि पार्सल किस तारीख़ को एवाग तक पहुँचेगा। अपने कपड़े निकाल कर बाक़ी वह अपने साथियों में बाँट देगा। उसे अपने कपड़े पसंद आएँगे और उसके नाप के होंगे————।

अपने बेटे और उस पार्सल के बारे में सोचते हुए मार्गरेट ने युद्ध के मोर्चे की कल्पना की। विस्तृत, उजाड़ मैदान जिसमें रह-रहकर भयंकर विस्फोट होता है। सघन अंधकार जिसमें एक सितारा नहीं झलकता। आस-पास की हर चीज़ क्रूर और अनिष्ट करने वाली, हर तरफ़ खतरा और दुश्मन !

अक्सर रातों को वृद्धा के आगे कैसे-कैसे चित्र उभरा करते; भविष्य के अनिष्ट नाचते और आशाएँ झाँका करतीं। युद्ध-भूमि के काल्पनिक चित्र से भयभीत होकर उसकी इच्छा होती कि वह स्वयं वहाँ पहुँच जाए। एवाग और उसके साथियों की ओर आने वाली दुश्मन की गोलियों को रोक ले। ख्याली पंखों पर उड़कर मार्गरेट मोर्चे पर पहुँच गई। दिन-भर की लड़ाई के बाद रात में खाइयों में विश्राम करते हुए सैनिकों को और अपने एवाग को उसने देखा। वह स्वयं ऊपर से नीचे तक काली पोशाक पहने हुए और कंधों पर काली शाल ओढ़े हुए, सोए सैनिकों पर निगाह जमाए, धीरे-धीरे खाइयों की कतार में घूमती रही। दूर तक देखने की कोशिश करती हुई अपनी थकी कमज़ोर आँखों पर ज़ोर डालकर वह अंधकार टटोल रही थी ताकि हमला होते ही वह ललकार सके, 'जागो बच्चो उठो दुश्मन बढ़ रहा है !' धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए, ताकि उसके पैरों की आहट सैनिकों को न जगा दे, मार्गरेट थके और सोते हुए सैनिकों को देखती खाइयों की लाइन में लगातार चलती रही, घंटों तक। दिन अथवा रात में जब भी मार्गरेट अपने पुत्र के सम्बन्ध में विचार करती उसकी कल्पना में ये सारी बातें उठा करतीं। बाक़ी समय वह गृहस्थी के कामों में, एवाग के बच्चों की तीमारदारी और रसोई में लगाया करती, हमेशा तेज़ी से चलती, चिंतित और विचारों में खोई हुई।

पड़ोसी कहते—"चाची, तुम फिर से युवा हो रही हो। पहले तो कहती थीं, तुम्हारा समय आ गया। आखिर तुम मरी तो नहीं।"

"और जब तक मेरा एवाग नहीं लौटेगा मैं मरूँगी नहीं।"

"जब तक मैं उसे फिर देख न लूँ तब तक ज़िंदा रहूँगी।"

यह बात मार्गरेट ऐसे कहती जैसे जीवन और मरण उसके वश में हों, जैसे अपनी मृत्यु का दिन और समय वह स्वयं निश्चित कर सकती हो।

————इस बात में उसका अटूट विश्वास था।

अनु० : जीवन नायक



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# इंतज़ार

**शक्तिपाल केवल**

**तेज धूप !**

बराबर वाले कमरे में रूही अपने शौहर लतीफ के साथ कहकहों के समुंदर में डूबी हुई थी। उनकी खनकती हँसी और नग़मी कहकहे एक वज़नी हथौड़े के मानिन्द सलमा के दिल-दिमाग़ पर चोटें कर रहे थे। उसका पैन अचानक चलते-चलते रुक गया और वह बड़ी ही बेचारगी के अन्दाज़ में अपने सामने मेज़ पर फैले काग़ज़ों को देखने लगी, जो तीस साल से उसका साथ देते आए थे। सलमा को लगा, वह एक ऐसी तहरीर है जिसकी लिपि से कोई वाकिफ नहीं, यहाँ तक कि वह खुद भी नहीं। वह कुर्सी से उठकर कमरे में घूमने लगी। कमरे की हर एक चीज़ से उदासी और मायूसी का रंग टपक रहा था। घुटन और बेचारगी हर लमहा बढ़ती जा रही थी। उसने बालकनी में खड़े होकर बाहर सड़क पर एक नज़र डाली, दूर तक काली पथरीली सड़क विधवा की माँग की तरह वीरान पड़ी थी। सारा माहौल जल रहा था। सहसा सड़क किनारे के दो दरख्तों में उसकी नज़र उलझ गई। एक दरख्त बहुत घना था। उसकी छाया बहुत गहरी थी। दूसरा दरख्त बिल्कुल सूखा और रुंड-मुंड था। कितनी ही बार पूरा चाँद निकला है, कितनी ही बार बरसात की पहली फुहार ने ठंडे होंठों से उसे छुआ है। कितने ही वसंत अठखेलियाँ करते उसके पास से गुजर गए हैं, मगर वह बेबर्गोबार ही रही। सलमा को लगा, वह भी उस दरख्त की तरह है जिसकी जिंदगी का रस सूख गया है।

सलमा सोचना चाहती है, ऐसा क्यों? मगर रूही और लतीफ की हँसी की घंटियाँ उसे विचारों की घाटियों में जाने से रोक देती हैं। और अनायास वह ज़िंदगी के इस मोड़ पर खड़े होकर पीछे झाँकने लगी :



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—उसने एम० ए० कर लिया है और रिसर्च वर्क में लगी है। हमेशा की तरह उस दिन वह यूनिवर्सिटी से लौटी तो रूही खुशी से चीखकर, उसके गले में दोनों बाहें डाल कर झूल गई——"बाजी"।

सलमा गिरते-गिरते बची—"हाय अल्लाह! इस निगोड़ी को हर वक्त शरारतें ही सूझती हैं।" और फिर एक मासूम बच्चे की तरह शिकायत भरे स्वर में वह वहीं खड़ी पुकार उठी "—डैडी।"

"चुप चुप, समो! फूफीजान अन्दर हैं।"

"वह कब आईं?"

"आज दोपहर की गाड़ी से। उन्होंने डैडी से तुम्हें रहमान भाई के लिए माँगा है।"

सलमा ने फटी-फटी उदास निगाहों से उसे देखा और अपने कमरे की तरफ चली गई। उसका मन अन्दर कहीं कराह उठा। काफी देर तक वह सिर को पकड़े कुर्सी में धँसी रही।

और फिर एक हंगामा! सलमा ने शादी करने से इंकार कर दिया है। क्यों? कहती है, शादी ज़िंदगी की तक़मील तो नहीं है। वह ज़िंदगी में कुछ करना चाहती है। शादी औरत की तरक्की की राह में एक ज़बरदस्त रुकावट है। फूफीजान ने सुना तो कानों पर दोनों हाथ रख कर बोलीं—"या अल्लाह! अपने गुनाहगार बन्दों को बख़्श!" फिर सलमा के वालिद नूरदीन की तरफ मुड़ कर बोलीं, "मियाँ, ठीक कहा है बड़ों ने, आजकल की छोकरियों ने अँग्रेज़ी पढ़ी नहीं कि दीदे का पानी ढला नहीं।"

फिर दिन, हफ्तों, महीनों और सालों में बदलने लगते हैं। सलमा पी एच० डी० करके यूनिवर्सिटी में लेक्चरर हो जाती है। घर में एक दिन शहनाई बजती है और रूही दुल्हन बन कर चली जाती है। सलमा खुश है—बहुत खुश। मगर चंद माह बाद खुशी की यही कोंपल ग़म के काँटे में बदलकर दिल की गहराइयों में चुभ जाती है। उसके वालिद की मौत हो जाती है। सलमा महीनों तक निढाल बैठी रहती है। रूही आकर लौट जाती है। सलमा घर में तनहा है, घर के बाहर तनहा है। तनहाई का कोहरा उसकी ज़िंदगी के हरे-भरे पौधों को पीला कर रहा है। जब वह किसी परिणाम पर नहीं पहुँचती तो अपने को किताबों में ग़र्क कर देती है—अभी अभी सुबह हुई है। वह 'जिस्ट' बना रही है। फिर यूनिवर्सिटी जाएगी। क्लास लेने के बाद वह लायब्रेरी हाल में बैठेगी। वहां काफी रात गए तक वह फिलासफ़ी और सायकॉलजी की किताबों के पन्ने पलटेगी। और, फिर थक कर घर को लौट जाएगीं, जहाँ कमरे की तनहाई उसकी मुंतज़िर होगी। ज़िंदगी के तीस साल ऐसे ही गुज़र गए हैं।

रूही और लतीफ के कहकहे दबी-दबी सरगोशियों में बदल चुके थे। सलमा का तमाम जिस्म पसीने में भीग गया था। वह खिड़की के पट से अपना हसीन चेहरा सटाए बाहर शून्य में घूर रही थी। आकाश का रंग लाल हो गया था, जैसे आग बरसने वाली हो। पथरीली काली सड़क के सीने में सूरज के नुकीले शोलों ने दाखिल होकर उसे दहकती हुई भट्टी में बदल दिया था। सलमा को महसूस हुआ कि तेज़ धूप है, आस-पास कोई छाया नहीं और वह उसी पथरीली तपती सड़क पर नंगे पाँव भागी जा रही है। उसे कहाँ जाना है? उसकी मंजिल कौन-सी है? वह नहीं जानती, जान नहीं पाती।

**कंदील**

जैसे अँधेरे में हल्की-हल्की शमाएँ जल उठें, दूर किसी वादी में दिन ढले, कुआँरे होठों से नग़मे फूट निकलें, पीले चाँद की रूपहली रोशनी में सागर की बेकरार लहरें फिज़ां में नाचने लगें, खुशबू भरे रेशमी जिस्म की मादकता दिल-दिमाग़ पर छा जाए और कुँआरे नाबालिग़ जज्बे प्यार का गीत बुनने लगें, सलमा को ऐसा ही महसूस हुआ। लगा तेज़ धूप चाँदनी में ढल गई है। उसने पिछले पहर की ढलती रात को अपने जीवन में समेट कर प्यार की एक कन्दील रोशन कर दी है और शफ़ीक़ उसके सामने खड़ा मुस्करा रहा है।

शफ़ीक़ दूर के रिश्ते में सलमा का भाई था। वह देहरादून से मिलिटरी-ट्रेनिंग खत्म करके आया था। यहाँ से उसे कोयम्बटूर जाना था। उसका चौड़ा सीना, खिलती पेशानी, झुकी-झुकी नजरें और गुफ़तगू का शीरीं अंदाज़! पहले दिन जब शफ़ीक़ आया तो उसने काली शेरवानी और सफ़ेद पाजामा पहन रखा था। रूही उसे कमरे



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ले आई और मज़ाक में बोली—'बाजी, एक शायर हज़रत अपनी गज़लों के मजमुआ पर आप से दीबाचा (भूमिका) लिखवाने आए हैं।"

सलमा ने हैरत से घूम कर देखा तो शफ़ीक़ ने कदरे झुक कर कहा—"आदाब, सलमा साहिबा !" "ओ, आप ! आइए, तशरीफ रखिए।" फिर वह कुर्सी से उठ कर कुछ बिखरे-बिखरे स्वर में बोली—"आप ने ख़त लिख दिया होता, मैं स्टेशन पर गाड़ी भिजवा देती।"

"जी शुक्रिया ! मैंने सोचा, जाना तो है, मुनासिब होगा कि आपको कम-से-कम तकलीफ दी जाए।"

रूही ने शरारत से कहा—"भाई जान, आप बड़े हकीकत पसंद हैं।"

जैसे फलों के भार से शारत झुक जाए, शफ़ीक़ ने उसी अंदाज में कहा, "यह बात तो नहीं, लेकिन मैंने चंद माह हुए नदीम में सलमा साहिब का एक मज़मून पढ़ा था जिसमें आपने लिखा था कि दुःख देने के बजाए उसे सह लेना इन्सानियत की मेराज़ है।

सलमा बिल्कुल खामोश थी। जज़्बात का एक तूफ़ान उसके दिल में था, मगर शब्द धोखा दे रहे थे। उसने सिर्फ इतना कहा—"रूही इन्हें अपने बराबर वाले कमरे में ले जाओ।"

उसके जाने के बाद वह घंटों अपने कमरे से नहीं निकली। शाम ढल गई तो शफ़ीक़ ने दरवाज़े पर पहुँच कर कहा—"सलमा साहिबा, क्या मैं आ सकता हूँ ?"

सलमा औंधे मुँह बिस्तर पर लेटी थी, वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। दोनों हाथों से सिर के बालों को दुरुस्त किया और बोली—'आइए।'

शफ़ीक़ कमरे में दाखिल होकर एक कुर्सी पर बैठ गया और बोला, "आपको तकलीफ न हो तो मुझे यूनिवर्सिटी दिखाइए। सुना है, आर्ट्स फैकल्टी की इमारत बेमिसाल है।"

अगरचे सलमा बेहद थकी हुई थी, मगर मना नहीं कर सकी। वह तैयार होकर उसके साथ चल दी। सलमा ने शफ़ीक़ को यूनिवर्सिटी का हर काबिले-जिक्र हिस्सा दिखाया। उसके बाद वे कैफेटेरिया के लॉन पर जाकर बैठ गए और घंटों तक लिटरेचर पर गुफ़्तगू करते रहे।

जब वे उठे तो उस वक्त चाँद साफ आकाश में सुनहरे मोती की तरह चमकने लगा था। उसकी किरणें मौलसिरी, गुलमोहर और सफेदे के पेड़ों से उतर कर हरी घास पर चहलकदमी करती हुई फूलों की पत्तियों से सरगोशियाँ करने लगी थीं। नीबू की झाड़ियों से निकलने वाली खुशबू नाइट क्वीन और इबी के फलों में रच-बस गई थी और हर राहगीर को कुछ पल वहाँ रुकने पर मजबूर कर रही थी। दोनों वहाँ आकर रुक गए। शफ़ीक़ ने उछल कर झाड़ी को पार किया और इबी का एक फूल तोड़ कर सलमा के बालों में टाँक दिया। सलमा के चेहरे का रंग यों लाल हो उठा, जैसे चाँद की एक किरण दूध के प्याले में डूबकर निकले और राह से गुलमोहर के फूलों की सुर्खी चुरा लाए।

रूही अपने शौहर के साथ वापस जा चुकी थी, मगर सलमा ने अकेलापन महसूस नहीं किया। वह थी और शफ़ीक़ था। हर सुबह अपने दामन में ढेर सारी खुशियों के फूल लाकर उन्हें दे जाती और हर शाम मुस्कराहटों के सितारे उनकी राहों में बिछा देती। सलमा के मन की खामोशी ने एक गीत गाया, बरसों से जमी बर्फ बूंद-बूंद करके बह चली और सड़क किनारे के सूखे दरख्त में से एक कोंपल न जाने कब फूट पड़ी।

**अंधेरे का सैलाब**

यकायक मुल्क जंग की लपेट में आ गया। सारा माहौल एक घन-गरज के साथ काँप उठा। एक पड़ौसी देश ने सरहदों पर हमला कर दिया था। सड़कों पर फौज़ियों से भरी गाड़ियाँ भागने लगीं, आकाश में वायुयानों का शोर बढ़ गया और दुश्मन के खिलाफ मुल्क भर के लोगों का ग़म और गुस्सा लावा बन कर उबल पड़ा।

शफ़ीक़ मोर्चे पर लड़ने के लिए चला गया था। सलमा ने यूनिवर्सिटी जाना बंद कर दिया था। वह हर वक्त रेडियो के सामने बैठी धड़कते दिल से जंग की खबरें सुनती रहती या अखबारों के पन्ने पलटती रहती। जंग दिन-ब-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन तेज़ होती जा रही थी। सलमा घंटों कमरे में इधर-उधर घूमती रहती। अक्सर उसके होंठ फड़फड़ाने लगते, जंग क्यों होती है, जंग क्यों हो रही है, जंग बंद क्यों नहीं होती ? वह सोच नहीं पाती कि क्या करे, कहां जाए ?

शफ़ीक़ को गए दो माह हो गए थे। मगर उसका कोई खत नहीं आया था। सलमा का मन चिंतित हो उठा। एक दिन अचानक एक गोली सनसनाती हुई आई और उसकी कनपटी में लगी। वह चीख मार कर ज़मीन पर गिर पड़ी। उसने अपना सिर पीट लिया और बालों को नोच डाला। उसकी समूची चेतना बिखर-सी गई––शफ़ीक़ जंग के मैदान में मारा गया था। रात धीरे-धीरे उतर आई थी। लेकिन वह फर्श पर पड़ी चीखती रही—शफ़ीक़, तुम नहीं मर सकते। शफ़ीक़, तुमने कहा था, मैं जल्द लौट आऊँगा। शफ़ीक़, तुम वापस आ जाओ। इबी के फूल तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं। गुलमोहर की मुँह-बंद कलियाँ तुम्हारे स्वागत के लिए राहों में बिखर गई हैं। तुम आओ––––शफ़ीक़ !

कमरे में अँधेरे का सैलाब था, प्यार की टूटी कन्दील थी, मगर कोई अपना नहीं था, कोई इबी के फूलों की बिखरी पत्तियों को समेटने वाला नहीं था। सलमा को लगा, वह सदियों से रोती आ रही है। सदियों से शफ़ीक़ का इंतज़ार कर रही है। वह सलमा नहीं, इवा है जो अली की मौत पर रोई है। वह मारिया है और उसने ब्राउन टेम की बारूद में झुलसी लाश पर आँसू बहाए हैं। यकायक वह ऐनालीना में बदल गई है। और अपने महबूब वारोनोकोवविच के लिए चीखी है। वह सियूमिन है और याँगसी नदी पर खड़ी वांगचिगची का मातम कर रही है। वह——————————!

सुबह अब भी आती है, मगर उसका दामन खुशियों के फूलों से खाली है। चाँद का दीप अब भी जलता है, बहारों में फूल खिल जाते हैं और खुशबुओं से भरी हवाएँ मदहोश करने लगती हैं। सफेदे के पेड़ बारिश में नहाकर और ज़्यादा चमकीले हो जाते हैं और हरी पत्तियों के सुरमई होठों पर लेटी शबनम प्यार का गीत बुनने लगती है। मगर सलमा बिल्कुल खामोश है, चुप है। हरएक आहट पर, हवा के हरएक झौंके पर उसकी झुकी-झुकी सिमटी निगाह दूर सड़क पर फैल जाती हैं, जैसे कोई इबी के ढेर सारे फूल लिए आ रहा है। अक्सर रात की तनहाइयों में वह घण्टों सड़क को घूरती रहती है, और फिर थककर फर्श पर घुटने में सिर को छिपा कर रोने लगती है और उसकी चेतना में फ़ैज के ये मिसरे धीरे-धीरे सिर उठाने लगते हैं—

**फिर कोई आया दिले-ज़ार, नहीं कोई नहीं**
**रह-रौ होगा कहीं और चला जाएगा**
**ढल चुकी रात बिखरने लगा तारों का गुबार**
**अजनबी खाक ने धुंधला दिए कदमों के सुराग**
**अपने बेख्वाब किवाड़ों को मुकफ्फल कर लो**
**अब यहां कोई नहीं आएगा।**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# मौत आख़िर आ ही गई

नरेन्द्रपाल सिंह

अरुमगाम ने आँखें खोलीं। चंदसिंह उसके बाईं ओर लेटा था और रामदित्ता दाईं ओर, एक मीटर से भी कम फासले पर।

चंदसिंह की आँखें अधखुली थीं पर वह सोया हुआ था। यही उसके सोने का ढंग था, अधखुली आँखें! आँखों के गोलों के गिर्द लाल डोरे, घनी पलकें और उससे भी घनी भौहें, जैसे वह क्षण भर में ही शिकार पर झपट पड़ेगा। जब उसके साथी उससे मज़ाक करते तो वह कहता, "आप मोटी चमड़ी वाले जानवर लड़ाई के बारे में क्या जानें? मेरी यह आदत बर्मा के जंगलों में ऊँचे-ऊँचे दरख्तों तले फूली-फली। तब दूसरा महायुद्ध शुरू ही हुआ था। जानते ही हैं कि आपको नींद में कमर कसे तैयार रहना चाहिए, नहीं। पर आप जानेंगे भी कैसे?'

वह जानता था कि वह झूठ बोल रहा है। उसके साथी भी जानते थे कि वह झूठ बोल रहा है। उन्होंने उसे फब्ती कसी, 'तभी तो तू लफ्टीनेंट बना फिरता है, बुद्धू!'

यह सच था कि उसे कोई उच्च पद नहीं मिला था। कोई छोटा पद भी नहीं। वह दूसरे महायुद्ध में केवल नायक था और अब हवलदार। इससे क्या? कम से कम चंदसिंह इसकी परवाह नहीं करता था।

वह अरुमगाम के निकट अपनी अधखुली आँखों से लेटा था—सोया हुआ था। उसका साफ़ा—बँधा सिर एक नुकीले पत्थर के बढ़े हुए किनारे पर टिका हुआ था। साफ़े के बाहर की पट्टियाँ मैली थीं, बेहद गंदी। वरदी भी मैली-कुचैली, बैटल ड्रेस, मोजे और पतलून भी। सैनिक बूट पालिश किए हुए थे? नहीं। पालिश तो पालिश जूते के चमड़े की परतें ही फट गईं थीं। एक बूट बिना एड़ी के था। दूसरा बिना फीतों का। उसकी सफेद दाढ़ी बँधी हुई नहीं थी। घने बाल हवा में लहरा रहे थे। दाढ़ी बाँधने का धागा कहीं खो गया था। यह पतला धागा उसकी आधी दाढ़ी छुपा लेता था। इसके होने से दाढ़ी सफाई से बँधी रहती थी, पर आज सुबह से दाढ़ी खुली ही थी। चंदसिंह वहाँ सोया पड़ा था।

रामदित्ता भी सोया पड़ा था। हरे ऊन के बुने टोप से उसका मुँह और सिर ढके हुए थे, सिवाय आँखों, नाक और होंठ के। यह टोप उसे ठंड से बचाता था, पर इसने उसके बुरी तरह जख्मी सिर को भी छपा कर रखा था। क्या हुआ था? उसे याद नहीं। हाँ, सिर्फ़ इतना याद आया कि उसने अपनी संगीन एक बौने चीनी के पेट में घुसेड़ दी थी। जैसे ही वह गिरा, उसे छोड़ कर वह दूसरे पर वार करने के लिए बढ़ा, पर तभी उसकी आँखों के सामने धुँध-सी छा गई। कोई चीज़ उसके सिर पर लगी, उसे ज़ोर का चक्कर आया और वह धरती पर लोट गया। क्या वह गिर पड़ा था? उसका ख्याल है, नहीं। कुछ भी हुआ हो, पर लड़ाई के बाद उसने देखा कि उसका सिर जख्मी हो गया है। चारों तरफ़ से खून गिर रहा है। अब वह बंद हो चुका था।

हरा टोप उसके गालों और ठोड़ी के जख्मों को छुपाता था और उसकी एक हफ्ते की बढ़ी हुई दाढ़ी को भी।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामदित्ता दाहिनी करवट लेटा था। उसकी आँखें अरुमगाम की ओर थीं। वह सीधा नहीं हो सकता था। उसने कमीज़ और जरसी पहिन रखी थी। जरसी पुरानी जान पड़ती थी। जगह-जगह से फटी हुई। उसका बैटल ड्रैस, पतलून दूसरों की बजाय नया और साफ़ लगता था। उसके बूट भी अच्छी हालत में थे और रबड़ का थैला और अन्दर का पशमीना भी।

अरुमगाम ने अपनी आँखें खोलीं। उसने पहले चंदसिंह की ओर देखा। उसका जी चाहा कि उस चेहरे की ओर देखता रहे। वहाँ कोई चीज़ उसे खींचती हुई लगी। कोई अदृश्य मुद्रा उसे चंदसिंह के शरीर और उसकी आत्मा की ओर आकृष्ट करती। उसके भारी अंगों और घने बालों में कौन-सी अदृश्य शक्ति छपी हुई थी जिसने उसे आत्मिक बल दिया था? क्या ऐसी बात संभव है? हाँ! नहीं तो वह किसी भी हालत में जीवित न रहता। उसने सोचा था कि वह अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा है जबकि चार दिन पूर्व चंदसिंह ने उसे खोजा था।

हाँ, चंदसिंह और रामदित्ता उसके पास कैसे आ पहुँचे? वह जानता था कि उसकी जाँघ में गोली लगी थी। वह उस समय तीन सौ तीन राइफिल की गोलियों का बक्स एक मोर्चे पर ले जा रहा था। उसे याद था कि उसे कम्पनी हैडक्वार्टर के पीछे फौजी इलाज के लिए लाया गया था, अल्फा कम्पनी के हैडक्वार्टर के पीछे। उसे यह भी याद था कि उसका कम्पनी-कमांडर मुथूस्वामी उससे मिलने आया था। पीछे लौटने के हुक्म के बारे में भी कुछ याद था। उसने समझा कि वह चल सकता है। उसने ज़िद की कि उसे स्ट्रेचर पर डाल कर न ले जाया जाए। कइयों की अवस्था उससे भी बुरी थी, उन्हें स्ट्रैचरों की सख्त जरूरत थी। उसने चलना शुरू कर दिया। शाम रात में बदल गई। वह अपने कई साथियों से बिछुड़ गया। सिर्फ़ लांस-नायक चैतूर रह गए। वे थक गए। बहुत थक गए। न उनके पास खाने को कुछ, न पीने को, और अरुमगाम कमज़ोर था। ऐसा लगता था कि अगर जख्मों से नहीं तो वह भूख से अवश्य मर जाएगा। वह बैठ गया। जख्म में से फिर खून बहने लगा। चैतूर ने कहा था कि अब इस पर काबू पाना असम्भव है। उसे स्ट्रैचर पर जाना चाहिए। अरुमगाम बैठ गया। फिर लेट गया। चैतूर ने उसकी सहायता की। चैतूर इधर-उधर देखने थोड़ी दूर तक गया। कुछ मिनटों के बाद वापस आया। उसने बताया कि पहाड़ी की अगली ढलान पर उसने आग जलती हुई देखी है। वह जाकर देखेगा। शायद मदद मिल सके। अरुमगाम! उसने कहा कि सुबह होने तक प्रतीक्षा करें, पर चैतूर कटुता से बोला, "तू बिना रोटी पानी के सुबह तक ज़िन्दा नहीं रह सकता।"

वह चला गया। कुछ देर में ही उसकी चीख और फिर 'धम्' की आवाज आई। हाँ, चैतूर फिसल कर गिर पड़ा था। अरुमगाम को इस बात का यक़ीन था। उसने खड़ा होकर दौड़ने की कोशिश की, पर वह मुश्किल से दो कदम ही चल पाया कि एक चट्टान से टकरा कर गिर पड़ा और अगले छत्तीस घंटों तक जब तक चंदसिंह आया, वह वहीं पड़ा रहा।

चंदसिंह ने बिना किसी आश्चर्य के कहा, "अरे तू यहाँ क्या कर रहा है जवान।"

उसने उसे उठाने का प्रयत्न किया, पर क्या अरुमगाम उठ कर खड़ा हो सकता था? उसके लिए तो बैठना भी असंभव था। वह बुदबुदाया—"पानी।"

चंदसिंह ने अपनी पानी की बोतल में से कुछ बूँदें उसे दीं। अब रामदित्ता भी आ गया।

"उस्ताद, यह क्या है?"

चंदसिंह ने उत्तर दिया, "दीखता नहीं! जवान के पेट में गोली लगी है। तुझको और मुझको इसे उठा कर ले जाना पड़ेगा! समझा?"

जवान को उठाना? चंदसिंह ने यह फैसला आसानी से दे दिया था जैसे यह दुनिया में सब से आसान काम हो। चंदसिंह के लिए होगा, पर अरुमगाम के लिए नहीं। क्या उसे इन पहाड़ों में से उठा कर ले जाया जा सकता है, चोटियों और घाटियों में से? वहाँ तो कोई पगडंडी भी नहीं। वह और चैतूर इतनी दूर कैसे पहुँच गए? चंदसिंह और रामदित्ता इस रास्ते पर कैसे आ गए? उसने इर्द-गिर्द की पहाड़ियों की ओर देखा और सोचा कि उसे उठा कर ले जाना असंभव है।—



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस हालत में उठा कर ले जाने से क्या ? बोमडीला यहाँ से पच्चीस किलोमीटर दूर। ज्याद ही होगा। रास्ता मालूम नहीं। पाँच दिन भी लग सकते हैं, और पन्द्रह भी। वह यकीनन इतने दिन जिन्दा नहीं रह सकता। जख्म रिस रहा था और शक्ति कम हो रही थी। अरुमगाम कहना चाहता था कि वे मूर्ख न बनें, पर क्या वह चंदसिंह के सामने बोलने का साहस कर सकता था ? नहीं। चंदसिंह के शब्द उस पर जादू कर गए। वह इस सिख हवलदार के सामने गूंगा था।

अरुमगाम चंदसिंह की ओर देखते हुए सोचने लगा, "पिछले चार दिनों में मैंने इन्हें कितना दुख दिया है ? अभी तक बोमडीला में होते। बोमडीला में न भी होते तो भी किसी ठिकाने तो जरूर पहुँच चुके होते।"

पर फिर मुझे क्या करना चाहिए ? क्या चंदसिंह मुझे यहाँ छोड़ सकता है, उसने न तो मेरी पल्टन का नाम पूछा न मेरी कहानी। रामदित्ता को स्ट्रैचर बनाने के लिए कुछ टहनियाँ काटने का हुक्म देकर स्वयं मेरे जख्म की देखभाल करने लगा।

अरुमगाम ने अपनी नजर रामदित्ता की ओर फेरी, उसके टोप की ओर। उफ, अगर वह उसका जख्मी सिर देख पाता तो दुआ करता कि रामदित्ता ठीक हो जाए। फिर उसने रामदित्ता के हाथों की ओर देखा। एक हाथ उसके माथे पर था। जिसकी हथेली ऊपर की तरफ थी। अरुमगाम डर गया। हाथ नीला था। नीला और खून से लथपथ। उसने चंदसिंह के हाथों की ओर देखा नीले और खून से भरे। दाएँ-बाएँ नज़र घुमाकर स्ट्रैचर की ओर देखा। चंदसिंह की खून-बहाती उँगलियों के निशान उस पर थे।

"काश ! मैं मर जाता। काश मैं मर सकता।" अरुमगाम फूट पड़ा—'मुझे इन्हें दुख देने का कोई हक़ नहीं।'

उसने अपना गला घोंटने के लिए अपना हाथ उठाने की कोशिश की, पर नहीं, उसमें ताकत कहाँ थी ?

रामदित्ता ने सोए-सोए ही एक लंबी साँस ली।

"उसे सपने आ रहे हैं ?" "अपनी माँ के ?" माँ-बेटे का आपस में गहरा प्यार था, उसके कोई और बहन भाई नहीं था। उसका पिता उसके जन्म से कुछ समय बाद ही मर गया था, करीब पच्चीस वर्ष पूर्व। माँ जरूर घबरा रही होगी। रामदित्ता का अंत ही उसकी माँ का अंत है। पर मेरे साथ तो ऐसा नहीं। अपने परिवार के आठ जीवों में मैं सब से छोटा हूँ। मेरे माता-पिता मुझे, मेरी मौत को भूल सकते हैं।'

"रामदित्ता को जीवित रहना चाहिए, मैं क्या करूँ ? क्या कर सकता हूँ ?

"मौत क्यों नहीं आती मुझे, मैं मुर्दे से भी बदतर हूँ, पर फिर भी जी रहा हूँ। चंदसिंह और रामदित्ता मुझे जिलाए रख रहे हैं। चंदसिंह में शक्ति का वास है। बिना आहार उसने मुझे चार दिन जिलाए रखा। वह मौत को पछाड़ सकता है। मैं वैसा ही बनना चाहता हूँ। मैं चंदसिंह के अधीन काम करना चाहता हूँ। पर यह नहीं हो सकेगा। मेरा अंत निकट है।"

चंदसिंह ने कितने दुश्मन मारे होंगे?—असंख्य ! मुझे विश्वास है। पर मैं सिर्फ दो चीनी ही मार सका ! मैं छोटा हूँ न ? अगर मैं बच गया तो मैं फिर लड़ाई में जाऊँगा; पर बच नहीं सकूँगा।

कल तक अरुमगाम में बोलने की, बुदबुदाने की ताकत थी। उसने चंदसिंह से कहा था—"उस्ताद ! आप मुझे यहीं छोड़ जाएँ। मेरी हालत नाजुक है।"

"चुप रहो अरुमगाम ! तुम जंग के बारे में क्या जानो ? बच्चे हो, बिगड़े हुए बच्चे, सारे पढ़े-लिखे बच्चे बिगड़े हुए होते हैं। साथी को मौत के मुँह में छोड़ा नहीं जाता। क्यों, रामदित्ता ठीक है न ?"

"जी उस्ताद।"

"जीं, उस्ताद !" चंदसिंह ने नकल की "तू भी जंग के मामलों में नौसिखिया है, तू क्या जाने।"

शाम को अरुमगाम ने एक और बहाना बनाया। पर चंदसिंह ने उसे फिर झिड़क दिया। रात को उसे अपने थैले में से आखिरी बचा-खुचा खाना देकर कहा, अब मेरे पास कुछ नहीं बचा। पर निराश न होना मेरे बच्चो ! लड़ने का मेरा यह पहला मौका नहीं। मैं पहले भी बिना खाए-पीए रह चुका हूँ—बर्मा में भीमा शहर के



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास । मैंने बरसों जख्मी और बीमारों को स्ट्रैचर पर उठाया है । जब जान पड़ता है कि सब कुछ खत्म हो गया है, कहीं न कहीं से मदद पहुँच जाती है, निराश न हो । यह युद्ध का उसूल है ।

जब चंदसिंह बाहर गया तो अरुमगाम ने रामदित्ता से कहा, "मुझे तुम यहीं छोड़ दो । मेरे कारण तुम्हारी ज़िंदगी भी खतरे में है । उस्ताद को मनाओ । चीनियों से लड़ने के लिए उसे जिन्दा रहना चाहिए । मुझे यकीन है, यह हमारी आखिरी लड़ाई नहीं ।"

"अरुमगाम, चंदसिंह जैसे आदमी को मना नहीं सकते । उसके पास हर बात का जवाब है वह आस-पास उगने वाली जड़ी बूटियों के बारे में जानता है जो कि खाने के काम आ सकती हैं । वह कल से उन्हें इकट्ठा कर रहा है हम उसके सामने बच्चे हैं । कुछ नहीं जानते ।"

"तुम्हारा क्या हाल है ? जख्म अब कैसे हैं ? मेरे लिए इतनी तकलीफ मत उठाओ——"

"मेरे बारे में भूल जा अरुमगाम, मैं बिलकुल ठीक हूँ । कोई मशक्कत नहीं करता । उस्ताद ही तुझे उठाता है । मैं तो केवल हाथ लगाता हूँ । और फिर तेरा भार ही कितना है ? तू तो एक बच्चे जैसा हल्का है, यही तो उस्ताद कहता है ।"

अरुमगाम ने चंदसिंह और रामदित्ता के खून से सने हाथों की ओर देख कर सोचा "मैं क्या सचमुच ही हल्का हूँ ।"

स्कूल में मुझे पढ़ाया गया था कि दृढ़ इच्छा शक्ति से मनुष्य आश्चर्यजनक काम कर सकता है । मैंने पिछले चार दिनों में अपनी आँखों से यह चमत्कार देखा है । चंदसिंह की इच्छा-शक्ति ने ही मुझे जीवित रखा है, पर अब मेरी मौत आ जानी चाहिए, अभी । मुझे विश्वास है कि चंदसिंह रामदित्ता को ठीक कर लेगा ।

अरुमगाम ने मुस्कराना चाहा, पर उसे महसूस हुआ जैसे वह अपने होठों को हिला नहीं सकता ।—'मौत आखिर आ ही गई !' क्या रामदित्ता और चंदसिंह को जगाऊँ ? क्या मैं उन्हें बताऊँ कि मैं क्या सोचता हूँ, क्या सोचता रहा हूँ । मगर, नहीं । अगर चंदसिंह जाग पड़ा तो वह मेरे और मौत के बीच खड़ा हो जाएगा !'

अरुमगाम ने आँखें बन्द कर लीं ।

उसके बाईं ओर कुछ हलचल हुई । चंदसिंह खाँसा और उसने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अरुमगाम की ओर क़रवट बदली । उसने अपनी बाईं कुहनी अपने सिर के नीचे रखी और उसकी पगड़ी उसके सिर पर से खिसकती हुई जान पड़ी ।

अरुमगाम क्षण भर चंदसिंह की ओर देखता रहा, और फिर उसकी आँखें बंद हो गईं ।

"जय हिंद—" उसने होठों में दुहराया । चंदसिंह और रामदित्ता के लिए कामना की कि वे आक्रमणकारियों को देश की धरती से खदेड़ फेंकने के लिए जीवित रहें ।

अनु० : सुरजीत



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# खोखला आदमी

## शिवकुमार जोशी

वह अस्पताल की खाट पर चित लेटा था। तम्बू की छत के एक कोने में उसकी निगाहें टिकी हुई थीं। सफेद कपड़ा वहाँ ठीक से सिला हुआ नहीं था। उधड़े हुए हिस्से से नीम के पत्तों का गहरा हरा रंग दिखाई पड़ रहा था और भूरे आकाश के कुछ टुकड़े भी।

विश्वजीत ने आँखें मींच लीं—दो क्षण के लिए। उन दो क्षणों में अकारण ही उसे वीणा की याद आ गई। उस चेहरे की रेखाएं कल्पना में उभार कर विश्वजीत ने थोड़ा हँस लिया। मान लो, वीणा को पता चल जाए। अवश्य वह क्रोधित होगी। क्यों न हो? विश्वजीत के संपूर्ण अस्तित्व पर उस का पूरा अधिकार है। इस बात को कभी वह बोल कर व्यक्त करती है, कभी बिना बोले। 'संपूर्ण अस्तित्व'—याने तन, मन और धन।

किंतु इस बार तो केवल तन की बात थी। तन याने विश्वजीत की हड्डियाँ, मांस, खून—सब। खून तो खास तौर पर।

"क्यों, मिस्टर मेहता, लेटे-लेटे हँस क्यों रहे हैं?" डाक्टर पारीख ने झुक कर विश्वजीत के हाथ पर ब्लड-प्रेशर नापने की पट्टी लपेटते हुए पूछा।

"मैं हँस रहा था? नहीं तो—" विश्वजीत ने आँखें खोल कर उत्तर दिया। डाक्टर पारीख ने देखा, इस समय भी वह हँस रहा था। उन्होंने रबर का वाल्व दबा कर पट्टी की पकड़ मजबूत की। विश्वजीत को लगा, उसकी मांसपेशी के बीच हाथ की हड्डी भिंच रही है।

डाक्टर ने ब्लड-प्रेशर प्रदर्शित करते चार्ट पर दृष्टि स्थिर की और कुछ आश्चर्य से कहा—"आपने अपनी उम्र कितनी बताई थी, मिस्टर मेहता?"

"सैंतीस। क्यों?"

"यूं ही।" डाक्टर ने जैसे कुछ टाल दिया हो। कान से स्टेथोस्कोप लगा कर वह विश्वजीत की धड़कनें सुनने लगे। विश्वजीत स्पष्टता से भाँप सका, उनके चेहरे पर अविश्वास के भाव थे।

सैंतीस!

विश्वजीत ने झूठ कहा था: वह सैंतालीस साल का था, हालाँकि दीखने में सैंतीस-अड़तीस से ज्यादा किसी तरह नहीं लगता था। वीणा भी अड़तीसवें में चल रही है, कौन विश्वास करना चाहेगा? उस दिन किसी ने कहा भी तो था, वीणा हद-से हद तैंतीस साल की हो सकती है। कोठारी?—हाँ, वह कोठारी ही था। [illegible] सेल्स-मैन है वह। वीणा की तारीफ़ के पुल बाँधते हुए उसने कहा था, "छोड़िए भी मजाक! मिसेस मेहता अड़तीस की है। आई वोन्ट बिलीव इट! बल्कि जब मैं तैंतीस कह रहा था तभी डर लग रहा था मुझे।"

वीणा खूब समझती थी कि कोठारी की बात में अतिशयोक्ति है—हालाँकि ज्यादा नहीं—और इस अतिशयोक्ति की छेड़ उसने पसन्द की थी। एयरकन्डीशनर का सौदा पक्का करके जब कोठारी चला गया था तो दस मिनट में ही वीणा ने शीशे के सामने पहुँच कर अपना प्रतिबिम्ब निहार लिया था—तीन बार। तीसरी बार विश्वजीत



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने इसकी चोरी पकड़ ली थी। पीछे से आकर उसने एकाएक ही वीणा को बाहों में भर लिया था और कहा था, "वीणा कोठारी ने प्रायः नहीं के बराबर झूठ कहा—सचमुच तुम—"

'आप भी कहाँ सैंतालीस के लगते हैं।"

'यह सब तुम्हारी सावधानियों के कारण ही है, वीणा—'

बात भी सच थी। विश्वजीत का स्वास्थ्य शादी के बाद ही इतना अच्छा हो पाया था। कब क्या खाया जाए, कब कितनी देर व्यायाम किया जाए, कहाँ किस तरह टहला जाए और कितनी देर आराम किया जाए—आदि सारी चिंताएँ वीणा ने अपने सिर ले रखी थीं। साल में एक-दो बार फेमिली डाक्टर से 'चेक-अप' करवा लेना भी वह बहुत पसन्द करती। इन्हीं सावधानियों का परिणाम था कि सैंतालीसवें में आ चुकने पर भी विश्वजीत केवल सैंतीस-अड़तीस का लगता था। डाक्टर से भी वह इसीलिए बड़ी सफाई के साथ झूठ बोल गया।

रबर की पट्टी के कड़े दबाव के कारण उभर आई नस में डाक्टर ने तीक्ष्ण, पोली नली चुभाई। दुख तो ज्यादा नहीं हुआ, लेकिन अपने-आप विश्वजीत की आँखें बंद हो गईं।

"दर्द हो रहा है?" डाक्टर ने पूछा।

"नहीं! दर्द कैसा!" विश्वजीत ने चेहरा दूसरी ओर फेरते हुए उत्तर दिया।

"मिस्टर मेहता, खून देने के लिए आपका इतना आग्रह क्यों हैं? अपनी जो उम्र आप बताते हैं, उसके अनुसार आप के खून का दबाव नार्मल नहीं है। पिछले दो-तीन सालों में कोई ऐसी दुर्घटना तो नहीं हुई जिसमें आपका काफी खून बहा हो?"

"नहीं।" विश्वजीत ने जवाब दिया। जवाब गलत नहीं था। वैसी कोई दुर्घटना नहीं हुई थी। लेकिन उम्र का असली आँकड़ा—

तीन सालों से उसे कभी-कभी चक्कर आ जाने की शिकायत थी। कभी तीन-चार जीने लगातार चढ़ने का अवसर आता तो साँस फूलते देर न लगती।

वीणा से यह स्थिति छिपी नहीं थी। इसीलिए तो उसने उस दुस्साहस के लिए साफ मना कर दिया था। "सैंतालीस की उम्र में आप का खून देना मैं गवारा नहीं कर सकती। यह ठीक है कि देश पर आपत्ति आई है लेकिन आप हद से हद यह कर सकते हैं कि सुरक्षा कोष में हज़ार, दो हज़ार ज्यादा दे दें। खून देने की बात सपने में भी न सोचिएगा।"

जब देश आपत्कालीन स्थिति से गुजर रहा हो—खून देना कौन गवारा कर सकता है और कौन नहीं, इसका निर्णय लेने का हक किसे है? पति की ओर से पत्नी ऐसा निर्णय ले सकती है क्या? विश्वजीत पूर्ववत् आँखें मूँदें रहा। उसकी नस में से कुछ बह रहा था। क्या वह सिर्फ लहू था? रबर की पतली नली में बहते लहू की एक-एक बूंद में और भी कुछ बह रहा था—कुछ अगोचर तथा नाजुक—भावनाओं की तरह—

सुदूर, पहाड़ी प्रदेश में बर्फानी हवाओं से जूझते, देश के सीमांत की रक्षा करते, नए खून के लाड़ले उन युवकों की टोलियाँ इस समय इधर-उधर बिखरी होंगी—स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार सदियों से अजेय हिमालय की किलेबंदी जो टूटी थी! विश्वजीत ने उन जवानों की स्मृति को अंजलि अर्पित की—जवान, जिन्होंने देश की रक्षा के लिए जान बिछा दी है—भारतीय शौर्य के इतिहास को पुनर्जीवित करते हुए।

एक समय था, जब विश्वजीत ने भी आज़ादी की लड़ाई लड़ी थी। अनोखी थी वह लड़ाई भी। निःशस्त्र प्रतिकार। 1942-43 के दिनों में विदेशी शासकों की गोलियाँ नंगी छाती पर झेल लेना आदर्श बात मानी जाती थी। 'मारो मत, खुद मर जाओ', यह बहुत कड़ी कसौटी थी। उसका ठोस अनुशासन के साथ पालन होता था। कई मौके मिले थे उसको, जब सचमुच छाती नंगी कर के शासकों की सेना का सामना किया जा सकता था—लेकिन विश्वजीत ने सामना वाकई कितनी बार किया? एक भी बार उसे गोली न लगी थी। इस में कसूर गोली का नहीं था—विश्वजीत का अपना था। वह इस बात से अवगत भी खूब था। जब भी स्थिति ने गंभीर रूप धारण किया था—याने जब भी वाकई गोली लगने की संभावना बढ़ी थी—विश्वजीत ने अपने बचाव का उपाय ढूँढ़ ही लिया था।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अनोखे निःशस्त्र प्रतिकार की केवल उसने बातें की थीं। जब भी, जहाँ भी खतरा बढ़ा था, वह कोई न कोई बहाना बनाकर अवश्य छू हो गया था। बाद में मन-ही-मन इस कायरता के लिए उसे शर्म आती। कई बार उसका जी चाहता, घनिष्ट मित्रों के सामने अपनी कायरता स्वीकार कर ले। इसके लिए वह मित्रों के पास जा भी पहुँचता, लेकिन बजाए इसके कि वह अक्षमताओं का इकरार करता, उसके मुँह से अपने काल्पनिक पराक्रमों की बातें फूटने लगतीं। तब उसके मित्र कहते कि वह बहादुर है—वैसा ही बहादुर, जैसा कि वह होना चाहता था किंतु एकांत में जब वह अपने भीतर झाँकता, लज्जा से गढ़ जाता। जीवन के प्रति कितना मोह था उसे। उफ़! जब तक वह इस मोह को तोड़ पाता—देश आज़ाद हो चुका था। 1942-43 की क्रांति तथा द्वितीय विश्व-युद्ध के काले बादलों ने धरती से विदा ले ली थी। जब तब विश्वजीत के भीतर से आवाज उठती, "कायरता का नन्हा सा अंश भी मेरे भीतर अब शेष नहीं है" पर काफी देर हो चुकी थी। "मैं अब बहादुर हूँ—झूठा नहीं, सचमुच का बहादुर।" इसे सिद्ध करने की उसकी आकांक्षा ही मन में रह गई और उम्र बढ़ती रही—जिंदगी की ज़िम्मेदारियों ने उसे ज्यादा से ज्यादा अपने में समेट लिया।

सामाजिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में विश्वजीत को महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त था। उसका हर कार्य दूसरों के लिए अमूल्य सीख जैसा होता। इतनी अच्छी सीख कमाने के बावजूद विश्वजीत के भीतर अभी भी कुछ खोखलापन शेष था। हालाँकि रहस्यों की रक्षा के लिए वह बहुत सावधान रहता, किंतु रक्षा आवश्यक भी तो इसीलिए थी कि उसके काम अनैतिक होते थे। मसलन, दुनियादारी के नाम पर इनकमटैक्स बचाना। उसकी जिंदगी में सहूलियतें कितनी हैं—इसका जितना अंदाज़ जन-साधारण को था, उससे कहीं ज्यादा सहूलियतों वाला, स्वार्थी जीवन वह जी रहा था। इसकी उसे आदत पड़ चुकी थी। पत्नी तथा बच्चों के साथ संबंधों में निष्ठा, उदारता तथा नीति का पालन करने में भी विश्वजीत यदा-कदा ढील कर जाता।

डाक्टर ने फिर से पूछा, 'सब ठीक है न, मिस्टर मेहता? कोई तकलीफ?'

'ओह, नो! कोई तकलीफ नहीं—' विश्वजीत ने फीका हँसते हुए उत्तर दिया। डाक्टर ने रबर की रक्त वाहिनी नलिका निकाल ली और पट्टी खोली। त्वचा में पड़े छिद्र पर उन्होंने कोई मलहम लगाया और रुई दबा दी। कोहनी से हाथ मोड़ कर उन्होंने कुछ मिनटों तक चुपचाप लेटे रहने के लिए सूचित किया।

—इस प्रकार जीवन में न जाने कितनी बार वह खोखलेपन से परास्त हुआ था—और लोग उसे विश्वजीत कह कर पुकारते थे। सपनों की नदी में महत्त्वाकांक्षाओं के घाट बहुत दूर छूट गए थे। वे घाट अब केवल परछाइयों जैसे लग रहे थे—विश्वजीत पर अट्टहास करती परछाइयाँ!

और......

—और अब परीक्षा आ पहुँची है क्या? नंगी छाती पर गोलियाँ झेल कर भी निर्विकार रहने का जो आत्मिक बल विश्वजीत ने 1942-43 गुज़र चुकने के बाद अपने में संजोया था—क्या अब उसकी कसौटी होने जा रही है? सुबह अखबार की पर्तें खोलते ही उसकी दृष्टि चीनी हमले के समाचारों पर टिक गई थी और उसने अपने-आप से सवाल किया था, "क्या यह अवसर नंगी छाती पर चुपचाप गोली सह कर मर जाने का है?

नहीं!

यह और ही तरह का अवसर है। मौत से कदापि डरना नहीं है लेकिन 'लो! हमें मारो' कहते हुए शत्रु के सामने चले जाया जाए क्या? नहीं। यह और ही तरह का अवसर है। 'हमें मारोगे? पहले खुद मरो।'—इस नारे का अवसर!

समाचारों ने उत्तेजित कर दिया था विश्वजीत को। पत्नी वीणा के सामने उसने अपने मनोभाव व्यक्त कर दिए थे। वीणा हँस दी थी और केतली से चाय डालती हुई बोली थी, "तो क्या आप को इस उम्र में लाम पर जाना है? सैंतालीस की उम्र में?"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने सुन्दर कप और डिश। उन के साथ कलात्मक केतली की जोड़ी भी क्या खूब है। और ये पौष्टिक, स्वादिष्ट बिस्कुट। सबसे ज्यादा तो यह वीणा, जो रोज़ की तरह अपनी दृष्टि से स्नेह छलकाती हुई सामने बैठी है। यह बँगला, कार, खूबसूरत लान—सारी सुविधाएँ!

"सब कुछ जैसा आज है, आगे भी ऐसा ही रहेगा?" —विश्वजीत के मन में प्रश्न का बगूला उठा था—यह पत्नी—ये बच्चे—सब-कुछ! क्या सारी वास्तविकताओं को सपने की संज्ञा दे दी जाए?

ओह!

पत्नी, बच्चों, कार, लान आदि के सुखद विचारों में जवानों की याद कहाँ से आ मिली? युद्ध की यह उत्तेजना बार-बार क्यों उभर आती है?

"क्या हो गया है आपको? चाय के कप की तरफ चुपचाप क्या देख रहे हैं?" पत्नी ने चिंतातुर स्वर में पूछा।

"वीणा, मैं कुछ करना चाहता हूँ—कुछ ऐसा जिससे—"

"चैक-बुक ले आऊँ? भेज दीजिए हज़ार, पन्द्रह सौ—जो भी आपको ठीक लगे।"

"सो तो भेजूंगा ही, लेकिन केवल रुपयों से यह आपत्ति थोड़े ही टलेगी? रुपए तो सब के पास होते हैं— सब दे सकते हैं। मेरा व्यक्तिगत योगदान क्या हुआ?"

"देखिए, मैं फिर से कहे देती हूँ—आप को ऐसी-वैसी बातें सोचने की कोई जरूरत नहीं है। क्या आप सोचते हैं, नेहरू सरकार के पास सूझबूझ है ही नहीं? देश के लिए लड़ने वाले और भी कई हैं। हमें अपनी उम्र का, अपने शरीर का ध्यान भी रखना चाहिए।"

विश्वजीत के शरीर पर वीणा का हक था—लेकिन कितना? क्या हर बात के लिए वीणा की अनुमति आवश्यक है?

विश्वजीत ने रुपए भेजे। वीणा ने अपना दस तोले का हार दे दिया। सुरक्षा-कोष से संबंधित और भी कई योजनाएँ बनाई गईं किंतु विश्वजीत संतुष्ट न था। आफिस का काम अधूरा छोड़ कर वह अस्पताल चला गया—खून देने। ब्लड-प्रेशर नार्मल न होने के बावजूद उसने आग्रह किया कि उसका खून लिया जाए। उम्र भी इसीलिए कम बताई।

"वैल, मिस्टर मेहता, आप की काफी तैयार है, ये सैंडविच भी आप के लिए हैं।" डाक्टर ने विश्वजीत का आभार मानते हुए कहा।

धीरे-धीरे विश्वजीत बिछौने से उठ खड़ा हुआ। टेबुल पर रखे गर्म काफी के कप पर उसकी दृष्टि पड़ी। तिपाई से खून की शीशी उठाकर डाक्टर अपने असिस्टैंट को दे रहा था। लाल, चटख खून। दो सौ पचास सी० सी० खून। विश्वजीत मग़रूर हो कर उसकी ओर ताकता रहा। उसके संपूर्ण अस्तित्व पर संतोष की पर्त आ गई।

घर लौटते हुए उसने रास्ते में तय किया कि वीणा को इस बारे में वह जरूर बताएगा। पाँच-दस हज़ार रुपयों से कहीं महत्त्वपूर्ण, स्वयं अपने अस्तित्व का एक अंश—दो सौ पचास सी० सी० लाल खून विश्वजीत ने देश के लिए दिया है। जन्म भूमि का इतना अधिकार विश्वजीत पर अवश्य है। युद्ध में घायल किसी जवान को विश्वजीत मेहता का खून जिला लेगा—वीणा सारा विरोध भूल जाएगी और उसके जैसे पति के लिए गौरवान्वित अनुभव करेगी।

कार पोर्च में पहुँची। रोज की तरह विश्वजीत ने संकेत सूचक हार्न बजाया। वीणा जरूर अचरज करेगी, विश्वजीत समय से दो घंटे पहले आफिस से कैसे लौट आया। डाक्टर पारीख ने भी सलाह दी थी, आज मिस्टर मेहता घर जा कर दो-चार घंटे रैस्ट लीजिए—यू विल फील बेटर—



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु दरवाज़े के पास वीणा न दिखाई पड़ी। कार से उतर कर विश्वजीत ने ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया। छोटी लड़की बड़े प्यारे स्वर में कोई कहानी पढ़ रही थी। वीणा और श्रीवत्स सामने बैठ कर ध्यानपूर्वक सुन रहे थे विश्वजीत ने प्रवेश किया है, इसका किसी को पता न चला।

"—और उस भिक्षुक ने पाटली-पुत्र की हर गली में अपनी झोली फैलाई। भगवान तथागत शहर के बाहर पधारे थे। इस नगर के निवासियों से उन्होंने श्रेष्ठ वस्तुओं का दान माँगा था—अरे ओ पौरवासी, सुनते हो न? —किसी ने हीरा-मोती दिए, किसी ने स्वर्ण अलंकार। कई लोग लाखों सुवर्ण-मुद्राएँ स्वयं आ कर दे गए। उस भिक्षुक को फिर भी संतोष नहीं था। हताशा से उसने नगर छोड़ कर जहाँ भगवान तथागत विराजते थे, उस तरफ कदम बढ़ाए। संध्या का मंद प्रकाश फैल रहा था। भिक्षुक की झुकी दृष्टि मार्ग की धूल पर टिकी थी। एकाएक पीछे से किसी ने कहा 'ओ भिक्षुक, ज़रा इस तरफ आइएगा?' भिक्षुक ने पीछे मुड़ कर देखा घनी झाड़ी के पीछे से एक दुवले-पतले हाथ से जर्जर वस्त्र लटक रहा था। 'भगवान तथागत के लिए मेरा यह एक मात्र वस्त्र ले जाएँगे?' झाड़ी की ओट में खड़ी भिखारिन ने कहा। भिक्षुक के चेहरे पर संतोष की रेखाएँ थिरक उठीं—"

लड़की यहाँ रुकी। उसका स्वर भीग आया था। उसने कहा, 'मम्मी, हमारी हेड-मिस्ट्रेस ने आज विद्यार्थी-समिति में भाषण दिया। यही कहानी उन्होंने भी सुनाई। वह बोलीं कि भिखारिन ने तथागत को अपना सर्वस्व दे दिया। भिक्षुक को उस का दान सर्वश्रेष्ठ मालूम पड़ा। आज हमें भी अपना सर्वश्रेष्ठ दान देश के चरणों में धरना है। हमारे तथागत नई दिल्ली में सारे देश की चिंता करते हुए बैठे हैं। उन्होंने अपनी झोली हमारे सामने फैलाई है......'

विश्वजीत चुपचाप सोफे पर बैठ गया। अभी तक किसी को उस के आने का पता नहीं था।

वीणा कह रही थी, "तुम्हारी हेड-मिस्ट्रेस ऐसी बातें जरूर करेंगी। सरकारी तन्ख्वाह जो खाती हैं। अच्छा चलो—अब तुम्हें नाश्ता करना है या नहीं? तेरे पप्पा ने पाँच हज़ार रुपए दिए हैं। मैंने भी दस तोले का हार दे दिया—सोचती हूँ, बाजूबन्द भी दे दूँ—रुपयों-पैसों से ज्यादा और क्या दें? तुम्हारे पप्पा खून देने की बात कर रहे थे। मैंने साफ मना कर दिया। अगर उन्होंने चोरी से दिया तो मैं इतनी नाराज़ होऊँगी —अरे? आप कब आए?" वीणा की दृष्टि विश्वजीत पर पड़ी।

विश्वजीत कुछ न बोल सका। पत्नी के शब्द उसके मस्तिष्क में गूंज उठे—'तो मैं इतनी नाराज़ होऊँगी—'

विश्वजीत का चेहरा फीका पड़ गया। दो सौ पचास सी० सी० खून और उसने तय किया, इस बारे में वह वीणा को कुछ न बताएगा। उसके चेहरे का रंग और ज्यादा उड़ गया। 'क्या मैं वीणा से डरता हूँ?" वह सोच रहा था, 'या स्वयं मैं ही भीतर से खोखला हूँ! सही कार्य को गुप्त रखने का क्या तात्पर्य?'

प्रश्न का उत्तर विश्वजीत ढूँढ़ता रहा—ढूँढ़ता ही रहा—

अनु० : मनहर चौहान



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पूरा बदला

सूबा सिंह

पहाड़ी की दाईं ढलवान पर था वह मोर्चा। मोर्चा क्या था, वास्तव में एक गहरी खाई थी। पत्थर से पत्थर यों सटे हुए, मानों ऊपर से लुढ़कते-लुढ़कते खाई में गिरने के भय से त्रस्त, यत्र-तत्र पैर अड़ा कर अटक गए हों। जसवंता हौलदार इन पत्थरों को देख, हँसा करता 'किसी ने जैसे भैंसे नरड़ कर फेंक छोड़े हों।' दूसरी ओर था पहाड़ी का शिखर, रुंड-मुंड, बिल्कुल झाड़ गिरने वाले दरांत के अग्र-मुख जैसा तीखा पर गोलाकार! अगली तरफ पहाड़ियों के बीच से रास्ता था, उत्तर की ओर चौड़े पहाड़ी जंगलों से अटा हुआ। वृक्षों की टहनियों, पत्तों और छोटे-छोटे प्रस्तर-खंडों से मोर्चा ऐसे ढका था, कि पाँच कदम की दूरी से भी उसके अस्तित्व का कोई आभास न मिल पाए। कुछ अधिक दिन नहीं हुए थे इस मोर्चे का निर्माण हुए, नफ़री भी कुछ ज्यादा नहीं रही थी। एक छोटी मशीन-गन बीड़ रखी थी, और 'जसवंते हौलदार' का सैक्शन उस पर डटा हुआ था। जसवन्ता हौलदार बड़ी चढ़त वाला सैनिक था। लाल, धधकती-सी आँखें, चौड़ी खरास के पाट की सी छाती, मुगदरों जैसी जांघें, मुड़ी हुई मूछें, पंच-कल्याण भैंस के सीगों जैसी। कभी गुस्से में जब वह अपनी मशीन-गन के नम्बर पर, और नम्बर दो मुन्शी पर नजरें गाड़ देता, तब अनायास ही कड़ाक की आवाज़ के साथ बूटों की एड़ियों को जोड़ कर 'हाँ उस्ताद' कहकर ही वे उससे पिंड छुड़ा पाते।

मूंछों के बीच मुस्करा कर, कंधों को झटक कर हौलदार सगर्व टिप्पणी करता—'जाओ, काम करो जाकर! फौजी जवान को देख, साधारण आदमी दहल नहीं जाए तो फौजी जवान हुआ हुआ न हुआ।' फिर खामोशी से वह अपनी मूंछों को मरोड़े दिए जाता। सिपाही यदि और टहोका देते, तो चाय के मग में से सड़ाक-से लम्बा घूंट भरते हुए वह अपनी रगों में दौड़ रहे फौजी-खून की कहानी सुनाने लगता—बड़ी गंभीरता से, पूरी शान के साथ :—

"मेरा बाप पंजाब रेजिमेंट में था। मैं क्या चीज़ हूँ, वह ऐसा जवान था कि मेरे जैसों को अनायास ही एड़ी मार बैठे तो यों लुढ़का दे, जैसे कच्ची सीढ़ियों पर से गिराया हुआ कटोरा चीखता-लुढ़कता जाता है। एक ही घूंट में पाँच सेर घी पी जाता था वह। उसे खच्चरों वाला हौलदार कहा करते, यही उपनाम पड़ गया था उसका। आप करतारसिंह हौलदार को पूछिए, कोई नहीं चीन्ह पाए, किन्तु खच्चरों वाले हौलदार को पूछिए तो सिपाही खुद जाकर उसके पास छोड़ आते।

खच्चरों वाले बैरक में जब वह पाँव रखता, खच्चरें घुरकने लग जातीं, मारे डर के पछाड़ें भूल जातीं। ज़रा सी ज़िद कभी किसी खच्चर ने की नहीं कि कमर में ऐसा मुक्का जमाता कि खच्चर का पेट नीचे पक्के फर्श के साथ जा चिपकता, उसके चारों खुर घिसट जाते। किन्तु दिल का वह कठोर नहीं था। खच्चरों को दाना-चारा देता तो हद्दें तोड़ देता।

"पल्टन" की रस्सा टीम अभ्यास करती, तो दरख्त की बजाए उसकी कमर के गिर्द रस्सा बाँध कर खींचा करती।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी की पूरी टीम झटके दे दे हार जाती, पर क्या मजाल जो मेरे बापू का पैर टस से मस भी हो जाए। वैसे में जर्मनों की मशीनगन वह अकेला ही जाकर उठा लाया था।..."

उसकी ये बातें सैनिकों को बड़ी दिलचस्प लगतीं। चाय पीते समय प्रायः रोज ही वे उसे छेड़ देते, और उसकी बातें सुना करते।

मोर्चा बहुत ऊँची जगह पर रहने के कारण, जसवंता हौलदार की सारी टुकड़ी की साँस फूल जाती, सिर चकराने लगता, किंतु सप्ताह भर में अब वे अभ्यस्त हो चुके थे। उन्हें अब इस स्थान के प्रति मोह-सा व्याप गया था। पहाड़ियों पर मेघ उमड़ आते, रुई के गालों की सी बर्फ गिरती तो जसवंता हौलदार अपनी मूंछों को झाड़ता हुआ हुँकारता।

देखो भई! ठंड तो बहुत है, अंगुलियाँ साली सीधी ही नहीं हो पा रही हैं। ऐसी सर्दी मेरी होश में तो सन् बत्तीस में पड़ी थी—सवेरे बाहर जाओ, तो पानी जैसे चुनौती दे रहा होता—देखो तो सही जरा मुझे छूकर। लेकिन मर्द को सर्दी कैसी? चढ़ा जाओ पाओ भर दारू, मारो दो-एक किलकारियाँ, और एक-दूसरे से जमाओ दो-चार पकड़े। फिर देखो, सर्दी कहीं करीब भी फटक जाए तो मेरा जिम्मा!—पर इतना याद रखो कि यहाँ इस मोर्चे का सारा दायित्व (जीती रहे यह शेर की बच्ची मशीन गन) हमीं पर है। सावधान रहना, इस रास्ते पर से दुश्मन तो क्या, चींटी तक गुजरने न पाए।

उसके सैक्शन के सिंह-सिपाही, इस ललकार पर पूर्ण उत्साह और आवेश से जय-घोष करते हुए कहते—'उस्ताद! दिल रखो—दिल! एक बार चीनियों को जरा आने तो दो, सुसरों को पुट्ठियों-सा ठोंक नहीं दिया तो कहना!'

सुनकर जसवंता हौलदार त्यौरियाँ चढ़ा लेता, और बड़े गंभीर लहजे में कह उठता—'जीते रहो, शेर के बच्चो! बस यों समझ लो कि हमारे गुरू ने चारों पुत्र और पिता श्री को देश पर बलिदान कर दिया था। स्वयं उन्होंने भी वीरगति प्राप्त की थी—बाबा दीपसिंह शहीद, अट्ठारह सेर का खण्डा धारण कर, हथेली पर सीस धरे लड़ा था। उनके नाम को हम बट्टा नहीं लगने देंगे। सच्ची पूछो तो वह सूरमा ही क्या जो समरस्थल में शेर-सदृश्य दहाड़ता न फिरे। खाट पर पड़े हड्डियाँ रगड़-रगड़ कर मर जाना तो कायरों का काम है, सिंह सूरमों को नहीं सोहता यह!'

"भई, मुझे याद नहीं रहतीं ज्यादा बातें, मगर हमारे गाँव में जब कभी दीवान लगा करता, तब ढाड्डी बार गाते, सूरमा-योद्धाओं का प्रशस्ति-गान करते, मीरा-कोट वाले महताब सिंह का, सुक्खासिंह का, हरीसिंह नलुए का। —और सुनकर मेरा खून खौलने लगता। मन होता, कभी मौका मिले, तो रण-भूमि में एक बार तो सूरमों की तरह दुश्मनों को धराशायी कर दिखाऊँ। मैं तो भरती ही हुआ था इसी उद्देश्य को लेकर। और आज जब चीनियों ने हमारी पगड़ी पर हाथ डाला है, हमने यदि उन हाथों को तोड़ नहीं दिया तो कोई हमें क्षमा नहीं करेगा। किसी युग में भी हमारा कल्याण नहीं होगा। बस भई जवानों! ज्यादा बातें बनाना मुझे नहीं आता, मैं तो कृत-संकल्प हो चुका हूँ कि जीते जी इस मोर्चे पर दुश्मन को नहीं फटकने दूँगा।"

और फिर वह मशीनगन की नली को धीरे-धीरे सहलाने लगता—"जीती रह तू—मेरी शेरनी! एक बार तो भून के रख देना वैरियों को—"।

"करनैल। सच पूछो तो इस मशीनगन पर हाथ फेरते हुए मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरा लहू बढ़ गया है।" करनैलसिंह कुछ पढ़ा लिखा था। हौलदार की तरह स्कूल के किसी मास्टर को पीट कर नहीं छोड़ दी थी उसने पढ़ाई वह कहता—

"उस्ताद! यही हमारा गहना जो ठहरी—हम सिपाहियों का। याद नहीं क्या तुम्हें? मेले-त्यौहारों पर जाने से पहले कैसे हम अपनी सम्म-लगी लाठियों को तेल से चुपड़-चुपड़ कर रखा करते थे। और फिर कितना मज़ा आता था तेल-चुपड़ी डांग को चलाने में। अच्चल के मेले पर एक बार हमने भलाईपुर वालों को कैसे पछाड़ा था। भरे मेले में धूम मच गई थी। जभी तो गुरु महाराज ने शस्त्र-पूजा को सूरमे का लच्छण कहा था—"

जसवंता हौलदार यद्यपि यही गाथा करनैल से कई बार सुन चुका था किन्तु फिर भी कह उठता—"जीते रहो!



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली बार [illegible]ई बात काम की कही है तुमने। लेकिन उधर भलाईपुर वालों के बीच यदि मैं होता, तो देखते तुम मेरे हाथ। यों [illegible]लताड़े देता तुम तीनों को जैसे मकई के चारे की पिटाई होती है। अव्वल तो जसवंता हौलदार किसी से लड़ता ही [illegible] नहीं, पर अगर कहीं भिड़ गया तो प्रतिद्वन्द्वी को भाग कर कभी माँ की कोख तक नहीं लौटने देता।"

"तेरी, भई हौलदार, उस्ताद, बात ही और है!" करनैला पूरे जोश से उसका समर्थन करता तो जसवंता हौल-[illegible]र समेत सबके सब खिलखिलाकर हँस देते। थोड़े फासले पर मार्ग प्रशस्त करता हुआ धरमसिंह सिपाही ऊँचे स्वरों में टप्पे के बोल अलापने लगता :

(जहाँ-जहाँ इसका वार पड़ता है, मेघ-गर्जन का सा स्वर गूँज उठता है, ऐसी है मेरे वीर की लाठी)

(जीवन सिंह मौड़ (तो मर गया) पर उसका पौत्र कालू शत्रु से गिनगिन कर बदले लेगा)

टप्पे के मधुर बोल सुनते ही जसवंता हौलदार हँसी रोक लेता, और आँख मार कर करनैले से कह उठता—"कोयल जैसी आवाज है साले धरमू की। सच, कोयल जैसी! कद-काठ इसका अगर मर्दाना न होता तो निश्चय ही नचारों की कोई टोली इसे ले उड़ती। वैसे है भी तो खूबसूरत। गाँव में इसको लेकर लाठियाँ चल जाया करती थीं।"

कहकहे गूँज उठते हौलदार की इस टिप्पणी पर। और कहकहों की चहकार को अधिक रंगीन बनाने के लिए पगड़ी के पल्लू से घूँघट काढ़ कर धरमू बिल्कुल औरतों की तरह कूल्हे मटकाने लगता और जसवंते हौलदार की पत्नी की सी महीन आवाज़ में स्वाँग भरता—"मैंने कहा जी! चाय ठंडी हो रही है। पल्टन जैसे नखरे घर में नहीं चलने के—।" और जब सैक्शन के सिपाहियों का वार्तालाप इस स्तर तक आ पहुँचता, तब सहसा गंभीर हो जसवंता हौलदार कड़क उठता—"बस जवान बस! अपनी अपनी पोजीशन पकड़ो—!"

इस मोर्चे पर जसवंता हौलदार की टुकड़ी को आए अभी पंद्रह दिन पूरे नहीं हुए थे, कि चीनियों का आक्रमण इस पर आरंभ हो गया।

सवेरे मुर्गे की बाँग के साथ ही, तोप के गोलों से पहाड़ियाँ गूँज उठीं। सार्टर और अन्य गोले डरावनी चीख के साथ, बर्फीली हवा को चीरते खौफ़नाक तरीके से गिरते। प्रस्तर-खण्ड और वृक्षों की टहनियाँ हवा में उछल कर काफ़ी दूरा पर जा [illegible] दो रातें और दो दिन निरंतर धुंआ-धार गोलों की वर्षा होती रही। अभी दोनों पक्षों से पहाड़ी और मार्टर तोपों की ही लड़ाई थी। चीनी दुश्मन जसवंता की टुकड़ी वाले मोर्चे की मशीनगन की मार से काफी दूर थे, अतः जब भी उनका कोई गोला मोर्चे के करीब गिर कर फटता तब जसवंता हौलदार दाँत कचीट कर कह उठता—"साले बिज्जुओं ने शोर तो बड़ा मचा रखा है, खासी खाक उड़ा रखी है, पर अंदर से बात कुछ भी नहीं। आ लेने दो हमारी मार तले भी ज़रा, एक बार तो भून के रख दूँगा।"

गोला-बारी होती रही। कोई गोला थोड़ी दूरी पर दाएँ जा गिरता, कोई बाएँ, और कोई काफ़ी पीछे हटकर। अधिकतर गोले नीचे खड्ड में ही गिरते। दो-एक, मोर्चे के चतुर्दिक लगी काँटेदार तार पर गिरे, लेकिन उनसे तारें कुछ और उलझ गईं।

अगली रात, शत्रु की मशीनगनें कड़कने लगीं। जसवंते हौलदार ने मूँछों को ताव देकर हुँकार मारी—'लो भई जवानों! वैरी नजदीक आ पहुँचा है। आज बता दो कि गुरु के सिख, भारती फ़ौज के लाड़ले कैसे लड़ा करते हैं।—"पुर्जा-पुर्जा क[illegible] मरें कबहुँ न छाड़हिं खेत—" अगर हमने यह मोर्चा छोड़ दिया तो कई मीलों तक हमारे पाँव ज[illegible]ीं [illegible] कदाचित् हैडक्वार्टर भी घेरे में आ जाए। आज सारी गढ़ी के बहादुरों की तरह एक-एक करके जानें वार दो—कई-कई शत्रुओं को मार कर!"

सहसा पीछे से टेलीफ़ोन बज उठा—"हौलदार! दुश्मन भारी संख्या में आगे बढ़ रहा है। अगर उसका ज़्यादा ज़ोर बढ़ जाए तो पिछले मोर्चे पर हट आओ—।" हौलदार ने खीझ कर टेलीफोन वहीं बंद कर दिया और बुड़बुड़ाने लगा।

'कितने फ़ज़ूल-से हुक्म सदर कर देते हैं। पीछे हट कर हमें क्या खाक लेना है।" उसने सिपाहियों को हुक्म



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनाया—"फेंको ! दुश्मन पर लाइट गोले फेंको ।" जसवंते हौलदार ने देखा, सामने कई सौ गज तक अँ[illegible] में जमंनों था । शत्रु की कई टुकड़ियाँ आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ सरकती हुई कोढ़-किरलों की तरह कभी-कभी सिरों को ऊ[illegible] उनके मोर्चे की ओर आ रही थीं ।

"और आ लेने दो अभी पूरी तरह मार-तले", उसने नम्बर एक करनैल के कान में कहा । दो-एक मिनट [illegible]र उसकी गुज़र गए । चीनी सिपाहियों की हरावल टुकड़ियाँ एक बार शोर मचा कर, आगे मोर्चे की ओर बढ़ने लगीं ।

"चाक पर से उतार कर रख दो इनको । पोंछ डालो, बुहार फेंको—" अपनी ही बोली में जसवंते का आदेश गूंज उठा । तड़-तड़-तड़—डज्-डज्-डज्—बढ़ते हुए चीनियों की टुकड़ी के सिपाही, कोई इधर लुढ़क गया, कोई उधर वेदना-युक्त अंतिम चीत्कार करता हुआ कुछ क्षणों को मौन व्याप गया ।

तब पिछली और बड़ी टुकड़ी आगे बढ़ी, चीखती, शोर मचाती हुई ।

"फायर ! देखना पाजी भागने न पाए ।"

मशीन-गन ने डज्-डज् के स्वर में बौछार कर दी । यह हमला भी रुक गया ।

शत्रु ने समझ लिया कि मृत्यु के काल-मुख में वे छलाँग नहीं मार सकते । उन्होंने बाईं ओर से हल्ला बोल दिया ।

"शाबाश करनैल सिंह ! फायर !! जरा चखाओ मज़ा इन्हें—"

वह टोली भी छँट गई । किन्तु दुश्मन की एक गोली करनैल सिंह की कनपटी में आ लगी । उसका सिर तुरंत मशीन-गन के ऊपर ही लुढ़क गया । जसवंते हौलदार ने बड़े दुलार से उसकी निष्प्राण देह को परे हटाया, और खुद मशीन-गन के पीछे लेट गया ।

"मुंशी ! चढ़ाना जरा पटा । सलामत रहो तुम—करनैले का बदला चुकाना है । एक की टक्कर में पचास की जानें ले के छोड़ेंगे—। हे कल्गी वाले ! तेरे सिंह का वचन है, इसे पूरा करना—।"

पुनः डज्-डज् करती मशीनगन आग बरसाने लगी । एक और गोली धरमें को लगी । वह चक्कर खा कर मोर्चे के एक ओर लुढ़क गया । गुस्से में हौलदार की आँखें मशालों-सी दहकने लगी । अपने सैक्शन के सिपाही [illegible] भाइयों की तरह लाडले रहे थे ।

"बदला चुका कर मरूँगा", उसने दाँत पीस कर संकल्प किया । और एक और गोली साएँ-साएँ करती मुंशी को निष्प्राण बना गई । मशीन गन का पटा उसके हाथ में ज्यों का त्यों पकड़ा रह गया ।

हौलदार का सारा शरीर गुस्से में धधक रहा था । लगता था, उसके भीतर कई गुना ताकत और आ गई है । चीनी शत्रु अनेक परछाइयों सदृश्य सरकते आ रहे थे । वे और निकट आ गए । हौलदार मोर्चे में अकेला रह गया था किंतु अचल, अडिग । बिफरा हुआ सिंह—। आहत, पर निढाल नहीं—बल्कि दहाड़ता हुआ !

उसके बाएँ हाथ, ग्रिनेडों का बक्स भरा धरा था । राइफल पर संगीन चढ़ी हुई थी, शत्रु के रक्त की प्यासी मशीनगन का एक पटा अभी शेष था । दाएँ हाथ से उसने पटा चढ़ा दिया, बाएँ से डज्-डज्-डज् आग बरसती रही । दुश्मन एक-एक करके गिरते रहे । लगता जैसे मृत्यु उन्हें घेर-घेर कर जसवंते हौलदार के समक्ष लिए आ रही है ।

मोर्चे के भीतर, पुनः टेलीफ़ोन बज उठा । दाएँ हाथ से एक ग्रिनेड उसने दाहिनी ओर से बढ़ी आ रही टुकड़ी पर फेंका । धमाका—चीनियों का आर्तनाद—फिर मौन—। उसने टेलीफ़ोन उठाया । आदेश [illegible] 'हौलदार वापस चले आओ' गोला बारूद अभी बचा है, तीन लाशें पड़ी हैं मेरे सिपाहियों की । 'आखिर पलट कैसे आऊँ—? नहीं—मोर्चा नहीं छोड़ूँगा । मत टेलीफ़ोन करो । चुप-चाप मुझे काम करने दो । पीछे लौट आने के लिए फौज में भरती नहीं हुआ था मैं—जसवंता हौलदार—!"

उसने दायाँ हाथ मशीनगन पर रखा, बाएँ से ग्रिनेड उठा कर दाँतों से उसकी पिन निकाली और घुमा कर बढ़ते हुए चीनियों पर दे फेंका । एक, दो, तीन, चार, पाँच, दड़, दड़ दड़———। मशीनगन और ग्रिनेडों की भययुक्त



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...श्रित हो रही थीं। चीनियों के ग्रिनेड उसके इर्द-गिर्द आकर गिरे। उनसे उड़ते हुए कंकरों से जैसे वह ...गा।

...उसने आखिरी ग्रिनेड फेंका। धमाके के साथ वह फट पड़ा। कुछ चीखें उभरीं और फिर वही सन्नाटा छा गया। ...र ने देखा उसकी बगल के नीचे कुछ गीला-गीला सा महसूस हो रहा था। पगड़ी का पल्लू फाड़ कर उसने कमर पर ...स के बाँध लिया और स्वतः कहने लगा—"काफी लहू है जसवंते हौलदार में। पूरी दो रातें बहता रहे तो भी खतम नहीं होने का।" अन्तिम वार के लिए उसने संगीन की धार पर अंगुलियाँ फेरीं—

"चल री मेरी चिर-संगिनी तू भी! आज तेरी साध पूरी करके मरूंगा" और वह मोर्चे में उकड़ू बैठ गया। खप से एक चीनी ग्रिनेड उसके करीब आ गिरा, पर फटा नहीं। उचक कर उसने उसे मुट्ठी में भींच लिया।

"बड़े आए सूरमा कहीं के। घबराहट में साले पिन भी नहीं निकाल पाए।"—कहकर अति भयानक स्वर में उसने जय-घोष किया और साथ ही पूरी शक्ति से वही चीनी ग्रिनेड, उधर ही लौटा दिया। एक सशक्त, भरपूर धमाका हुआ, और फिर पूर्ण निस्तब्धता—।"

प्राचीन की दिशा में सूर्योदय के साथ ही सरकते हुए धुंधलके में हौलदार जसवंते ने मोर्चे से उठ कर देखा दूर तक शत्रु का कहीं नामोनिशान तक नहीं था। कुछ गज़ों के फासले पर चीनियों की लाशें बिखरी पड़ी थीं। दराड़ों जैसी उनकी आँखों की पथराई हुई पुतलियाँ देख, हौलदार ने गुस्से में खंकार कर थूक दिया—"साले अमानव। भाई बनते थे, मक्कार, ज़लील कहीं के—।"

फिर अपने पार्श्व में पड़ी जवानों की लाशों के मस्तक पर बड़े दुलार के साथ हाथ फेर, यह कहता, मोर्चे से निकल कर पीछे लौट आया—

धरमें! ते गाया करता था न:

**"ज्यूण मौड़ मर गया तो क्या हुआ**
**उसका पोत्र कालू**
**गिन-गिन कर बदले लेगा।"**

"करनैले! मुंशी! जसवंते हौलदार—खच्चरों वाले हौलदार के पौत्र ने अभी तुम लोगों का पूरा-पूरा बदला नहीं लिया, पर वाह गुरु साक्षी है गिन-गिन कर बदले लूँगा—गिन-गिन कर—।"

**अनु० : शाकिर पुरुषार्थी**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

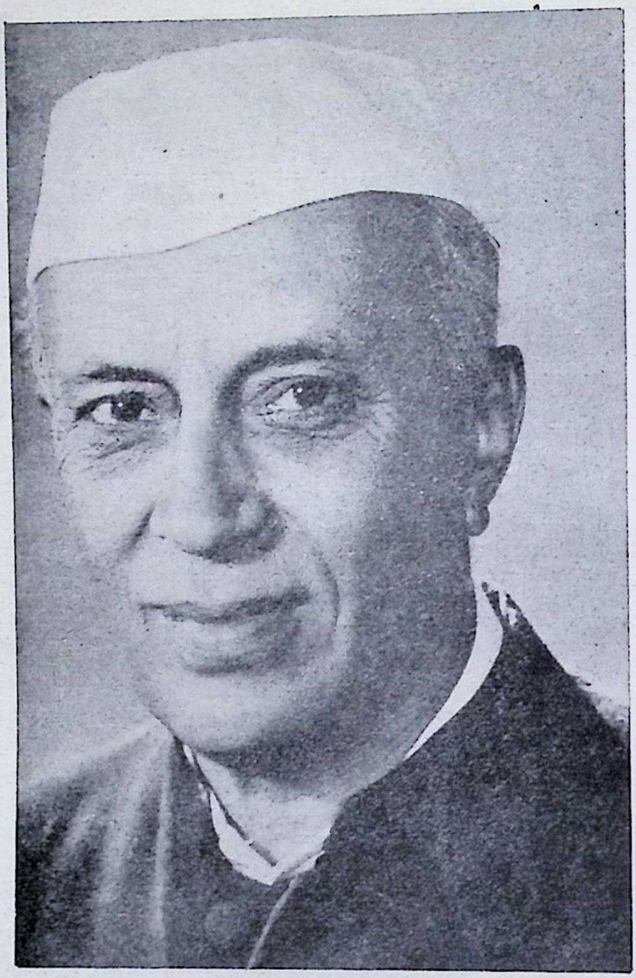

हिंदी बढ़ रही है और जितनी बढ़ेगी, उससे देश को लाभ होगा। यह प्रयत्न होना चाहिए कि हिंदी ज़ोरों से बढ़े। इसके लिए हिंदी के द्वार खुले रखने चाहिएं और अँग्रेज़ी की तरह दूसरी भाषाओं के शब्दों को पचाने की शक्ति भी हिंदी में लाने की कोशिश करनी चाहिए।

भाषा का सवाल बड़ा पेचीदा सवाल है। हम भाषा के झगड़ों में न पड़ें। जो समय हम भाषा के झगड़ों में बरबाद करते हैं यदि वह सारी शक्ति भाषा को बढ़ाने में लगाई जाए तो बहुत अच्छा काम हो सकता है।

भाषा एक-दूसरे को गिराती नहीं है बल्कि बढ़ाती है। देश की जितनी भी प्रादेशिक भाषाएँ हैं, वे सब राष्ट्रीय हैं, उन सबको बढ़ाना है।

भाषा तो एक आइना है उसमें आपके रूप की प्रतिच्छबि पूरी दिखाई देती है।

जवाहरलाल नेहरू

(हिंदी दिवस 1963 के भाषण से)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर' हरिवंशराय 'बच्चन' तथा
नंद चतुर्वेदी की कविताएँ––पंजाबी, बंगला, तमिल और गुजराती अनुवाद सहित ।

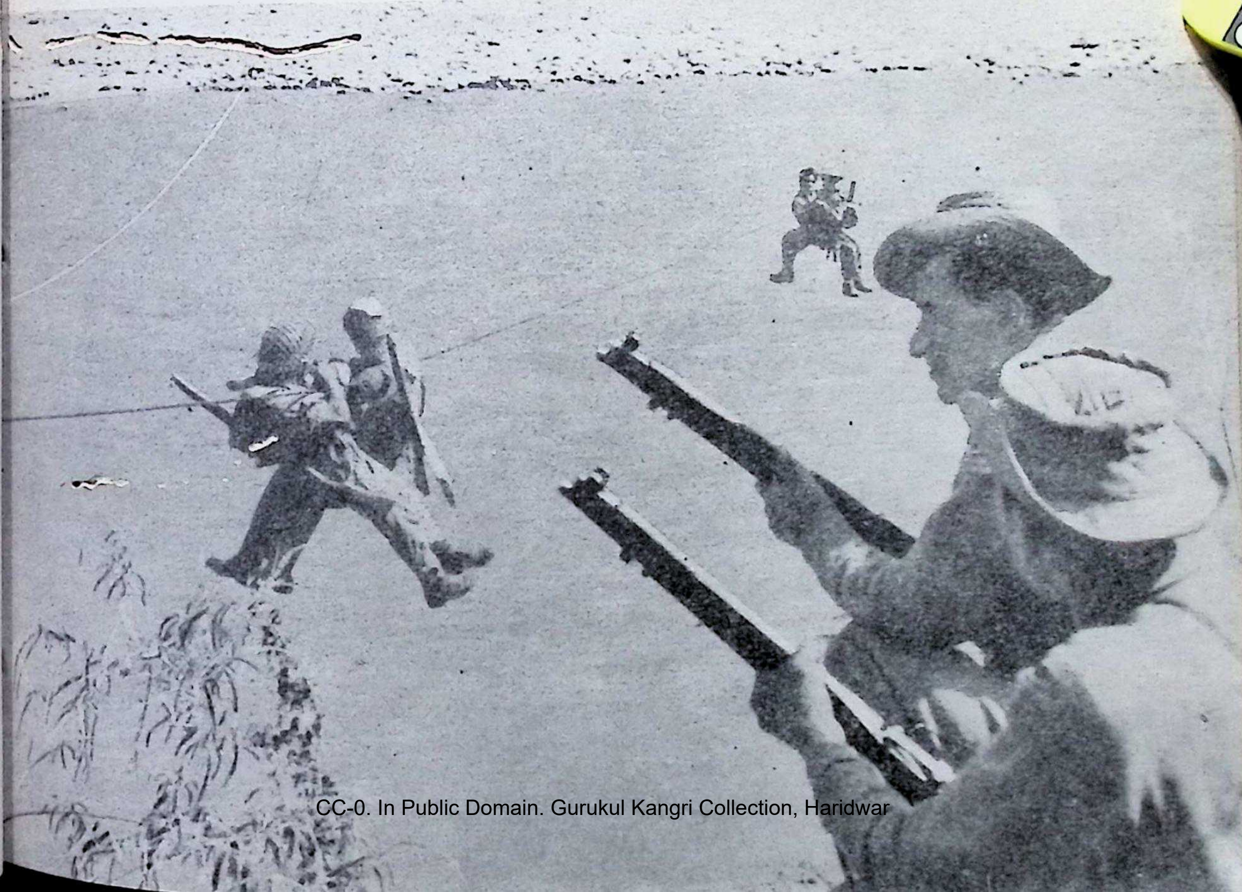

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विजय-पर्व

## मैथिलीशरण गुप्त

पंजाबी अनुवाद : कृष्ण अशांत

ऋषि दधीचि से गाँधी जी तक मिली हमें जो दीक्षा है,
बंधुजनों, प्रस्तुत हो, उसकी फिर आ गई परीक्षा है।
फिर सब देखें कठिन नहीं निज तपस्-त्याग बलिदान हमें,
परंपरा से पाया अपना रखना है सम्मान हमें।

घर सँभालने में, तटस्थ हो, लगे हुए थे जब हम लोग,
और चाहते थे जब सबका पंचशील-सम्मत सहयोग।
तभी पड़ौसी चीन अचानक होकर लोभ-पाप में लीन,
चला हमारी भूमि छीनने, तन का मोटा, मन का हीन।
हम निर्माण-निरत थे नाशक अणुबम नहीं बनाते थे,
अपने साथ दूसरों की भी शांति-समृद्धि मनाते थे।
आक्रामक होकर ऐसे में आकर जो हमसे अटके,
उठो, लगा दो उन्हें ठिकाने, वे मदांध भूले-भटके।

शताब्दियों के पहले हमने जिन्हें धर्म-शिक्षा दी थी,
विनिमय में धन-धरा न ली थी मात्र साधु-भिक्षा ली थी।
आध्यात्मिकता से हटकर वे नंगी भौतिकता में चूर,
हिंस्र-दृष्टि से गुरुकुल को ही घूर रहे हैं कायर क्रूर।
राष्ट्र-संघ में शुद्ध-भाव से हमने जिनका पक्ष लिया,
हमें उसी के लिए उन्होंने देखो क्या उपहार दिया।
उनकी यह दी हुई चुनौती हम क्या अस्वीकार करें,
कोई हम पर वार करे तो हम भी क्यों न प्रहार करें।
ठोकर मार चिता दो उनको देख रहे हैं जो सपने,
भूले नहीं प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द हमें अपने।
आए जो जय-पत्र लिखाने मृत्यु-पत्र लिख रक्खें वे,
लोहे के हैं चने हमारे चखना है तो चक्खें वे।

अपने आप आ गया है यह नई विजय पाने का पर्व,
न था कौरवों को क्या, यदि है उनको बहुसंख्या का गर्व।
चर लें भले टिड्डियाँ उड़कर इधर-उधर कुछ हरियाली,
पर जीते जी कहाँ लौट कर वे हैं फिर जाने वाली।
दाँतों में तृण धरे ढीट जो पागल पशु-से आ टूटे,
पंजे यहाँ चलावें जब तक, पावें निज छक्के छूटे।
पुरखों की खाई अफ़ीम की पीनक छाई है जिनमें,
क्यों न तोड़ने चलें मलिन वे निकट देख तारे दिन में।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ਵਿਜੇ ਪੁਰਬ

### ਮੂਲ : ਮੈਥਲੀਸ਼ਰਣ ਗੁਪਤ

### ਕਾਵਿ ਅਨੁਵਾਦ : ਕ੍ਰਿਸ਼ਨ ਅਸ਼ਾਂਤ

ਰਿਸ਼ੀ ਦਧੀਚੀ ਤੋਂ ਲੈਕੇ ਗਾਂਧੀ ਜੀ ਤੀਕਰ, ਜਿਹੜੀ ਸਿਖਿਆ ਅਸੀਂ ਅਜ ਤੀਕਰ ਪਾਈ ਹੈ,
ਹਾਜ਼ਰ ਹੋਵੋ ! ਆਓ ਵੇਲੀਓ ! ਉਸ ਸਿਖਿਆ ਦੇ, ਇਮਤਿਹਾਨ ਦੀ ਘੜੀ ਅਜ ਸਾਹਵੇਂ ਆਈ ਹੈ।
ਫਿਰ ਸਭ ਵੇਖਣਗੇ ਕਿ ਸਾਨੂੰ ਮੁਸ਼ਕਲ ਨਾਹੀਂ; ਤਪਸ-ਤਿਆਗ ਦੀ ਹਸਕੇ ਤੇ ਕੁਰਬਾਨੀ ਦੇਣਾ,
ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਰ ਪੀੜ੍ਹੀ ਤੋਂ ਪਾਈ ਇਜ਼ਤ ਖਾਤਿਰ, ਆਪਣੀ ਖੁਸ਼ੀ ਨਾਲ ਆਪਣੀ ਜ਼ਿੰਦਗਾਨੀ ਦੇਣਾ।

ਆਪਣੇ ਘਰ ਨੂੰ ਜਦੋਂ ਸੰਭਾਲਣ ਦੇ ਅੰਦਰ ਹੀ, ਅਸੀਂ ਲੋਕ ਤੇ ਚੁਪ ਚਾਪ ਸਾਂ ਲਗੇ ਹੋਏ,
ਚਾਂਹਦੇ ਸਾਂ ਕਿ ਪੰਚ-ਸ਼ੀਲ ਦੇ ਮੂਲ ਤੱਤ ਨੂੰ, ਮੰਨਣ ਤੇ ਅਪਨਾਣ ਲਈ ਕੋਈ ਅੱਗੇ ਹੋਏ।
ਉਸ ਵੇਲੇ ਚੀਨ ਅਚਾਨਕ ਸਾਡਾ ਗੁਆਂਢੀ, ਲੋਭ ਪਾਪ ਵਿਚ ਮੱਤਾ ਆਪਣਾ ਆਪ ਭੁਲਾਕੇ,
ਮਨ ਦਾ ਭੈੜਾ ਗਿਰਿਆ ਹੋਇਆ, ਤਨ ਦਾ ਮੋਟਾ, ਸਾਡੀ ਭੂਮੀ ਖੋਹਣੇ ਖਾਤਿਰ ਆਇਆ ਧਾਕੇ।
ਅਸੀਂ ਨਵੇਂ ਨਿਰਮਾਨ ਵਿਚ ਲੱਗੇ ਹੋਏ ਸਾਂ, ਨਾਸ਼ਕ ਐਟਮ ਬੰਬ ਨਹੀਂ ਸਾ ਪਏ ਬਣਾਂਦੇ,
ਅਸੀਂ ਸ਼ਾਨਤੀ ਹੀ ਚਾਂਹਦੇ ਸਾ ਸਦਾ ਆਪਣੀ, ਤੇ ਹੋਰਾਂ ਦੀ ਵੀ ਸਾਂ ਦਿਲ ਵਿਚ ਖੈਰ ਮਨਾਂਦੇ।
ਐਸੇ ਮੌਕੇ ਬਣਕੇ ਤੇ ਹਮਲਾਵਰ ਜਿਹੜਾ, ਸਾਡੇ ਨਾਲ ਜੋ ਟੱਕਰ ਲੈਣ ਲਈ ਹੈ ਧਾਇਆ,
ਉਸੇ ਨਸ਼ੇ ਵਿਚ ਅੰਨੇ ਭੁਲੇ ਭਟਕੇ ਤਾਈਂ, ਉਠੋ ! ਸਬਕ ਸਿਖਾਓ ਅਜ ਸਮਾਂ ਹੈ ਆਇਆ।

ਸਦੀਆ ਪਹਿਲਾ ਜਿਸਨੂੰ ਕਦੇ ਚੇਲਿਆਂ ਵਾਂਗੂ, ਅਸੀਂ ਧਰਮ ਦੀ ਆਪੇ ਹੀ ਸੀ ਦਿਤੀ ਸਿਖਸ਼ਾ,
ਜਿਹਦੇ ਬਦਲੇ ਧਨ ਜਾਂ ਧਰਤੀ ਲਿਆ ਨਾ ਕੁਝ ਵੀ, ਲਈ ਸੀ ਕੇਵਲ ਸਾਧੂਆਂ ਦੇ ਵਾਂਗੂ ਇਕ ਭਿਖਸ਼ਾ।
ਅਜ ਅਧਿਆਤਮਿਕਤਾ ਤੋਂ ਉਹ ਪਿਛੇ ਹਟਕੇ, ਨੰਗੀ ਭੌਤਿਕਤਾਂ ਦੇ ਵਿਚ ਸਰਸ਼ਾਰ ਹੋਏ ਨੇ,
ਬੁਜ਼ਦਿਲ ਕੁਤੇ, ਪਸ਼ੂਆ ਵਰਗੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਦੇ ਸੰਗ, ਆਪਣੇ ਗੁਰ ਨੂੰ ਘੂਰਨ ਖਾਤਿਰ ਤਿਆਰ ਹੋਏ ਨੇ।
ਸੁਧ ਭਾਵ ਦੇ ਨਾਲ ਅਸੀਂ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਜਾਕੇ, ਰਾਸ਼ਟਰ-ਸੰਘ ਦੇ ਵਿਚ ਪੱਖ ਸੀ ਪੂਰਾ ਲੀਤਾ,
ਅਜ ਉਸੇ ਕੀਤੇ ਉਪਕਾਰ ਦੇ ਬਦਲੇ ਅੰਦਰ, ਦੇਖੋ ਉਹਨਾ ਭੇਟਾ ਕੀ ਉਪਹਾਰ ਹੈ ਕੀਤਾ।
ਅਜ ਚੁਨੌਤੀ ਜੋ ਉਹਨਾਂ ਦਿਤੀ ਹੈ ਸਾਨੂੰ, ਉਸਨੂੰ ਮੰਨਣ ਤੋਂ ਨਾਹੀ ਇਨਕਾਰ ਹੈ ਸਾਨੂੰ,
ਕੀਤੇ ਗਏ ਵਾਰ ਦਾ ਬਦਲਾ ਵਾਰ 'ਚ ਦੇਣਾ, ਇਹ ਚੁਨੌਤੀ ਇਸ ਖਾਤਿਰ ਸਵਿਕਾਰ ਹੈ ਸਾਨੂੰ।
ਠੋਕਰ ਮਾਰਕੇ ਅਜ ਜਗਾ ਦੋ ਉਹਨਾਂ ਤਾਈਂ, ਨੀਂਦ ਵਿਚ ਜੋ ਵੇਖ ਰਹੇ ਨੇ ਝੂਠੇ ਸੁਪਨੇ,
ਅਜ ਪਰਤਾਪ ਸ਼ਿਵਾ ਜੀ ਗੁਰੂ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਵਰਗੇ, ਯੋਧੇ ਭੁਲੇ ਤੇ ਨਾਹੀ ਹਨ ਸਾਨੂੰ ਆਪਨੇ।
ਅਜ ਲਿਖਵਾਣ ਜਿੱਤ ਦਾ ਪਤਰ ਆਏ ਜਿਹੜੇ, ਕਹਿ ਦੇਵੋ ਲਿਖ ਲੈਣ ਮੌਤ ਦਾ ਪੱਤਰ ਆਪੇ।
ਲੋਹੇ ਦੇ ਹਨ ਚਨੇ ਅਸਾਡੇ ਪਾਸ ਵਧੇਰੇ, ਵੇਖ ਲੈਣ ਚਖਕੇ ਜੇ ਚਖਣਾ ਸੋਖਾ ਜਾਪੇ।

ਨਵੀਂ ਜਿੱਤ ਦਾ ਪੁਰਬ ਆ ਗਿਆ ਸਾਡੇ ਸਾਹਵੇਂ, ਏਸ ਪੁਰਬ ਨੂੰ ਅਸੀਂ ਖੁਸ਼ੀ ਦੇ ਨਾਲ ਮਨਾਣਾ,
ਜੇ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਮਾਣ ਆਪਣੀ ਗਿਣਤੀ ਉਤੇ, ਵਾਂਗ ਕੌਰਵਾ ਪੈ ਜਾਏਗਾ ਮਾਣ ਗੰਵਾਣਾ।
ਮੰਨਿਆ ਸਾਡੇ ਖੇਤਾਂ ਵਿਚੋਂ ਕੁਝ ਹਰਿਆਲੀ, ਇਹ ਟਿਡੀਆਂ ਚਰ ਲੈਣ ਜ਼ਰਾ ਐਵੇਂ ਉਡ ਉਡ ਕੇ,
ਐਪਰ ਜਿਊਂਦੇ ਹੀ ਇਹਨਾ ਟਿਡੀਆਂ ਦੇ ਦਲ ਨੇ, ਵਾਪਸ ਆਪਣੇ ਦੇਸ਼ ਨਾ ਜਾ ਸਕਣਾ ਹੈ ਮੁੜ ਕੇ।
ਇਹ ਢੀਠ ਜੋ ਤਿਨਕੇ ਦੰਦਾ ਹੇਠ ਦਬਾਂਕੇ, ਪਾਗਲ ਪਸ਼ੂਆਂ ਦੇ ਵਾਂਗੂ ਸਾਡੇ ਤੇ ਟੁਟੇ,
ਅਪਣੇ ਪੰਜੇ ਜੋ ਹਥਿਆਰਾ ਵਾਂਗ ਚਲਾਵਣ, ਪਰ ਸਮਝਦੇ ਜਦੋਂ ਇਹਨਾ ਦੇ ਛੱਕੇ ਛੁਟੇ।
ਪਿਓ ਦਦੇ ਦੀ ਖਾਧੀ ਫੀਮ ਦੀ ਪੀਨਕ ਸਾਰੀ, ਜਾਪ ਰਿਹਾ ਜਿਦਾਂ ਹੈ ਹਾਲੀਂ ਤੀਕਰ ਛਾਈ,
ਮਨ ਦੇ ਗੰਦਿਆਂ ਦਿਨ ਨੂੰ ਤਾਰੇ ਨੇੜੇ ਤੱਕ ਕੇ, ਤੋੜ ਲੈਣ ਦੀ ਅਜਬ ਜਿਹੀ ਹੈ ਵਿਉਂਤ ਬਣਾਈ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णा-गोदावरी-पंचनद, गंगा-यमुना उमड़ी आज,
किन्तु एक चुल्लू यथेष्ट है यदि है रिपुओं को कुछ लाज।
मार्ग न रहने दो जाने का ऐसे आने वालों को,
मुँह की खाने दो उन मन के मोदक खाने वालों को।
काल कठिन तो दृढ़ हैं हम भी, स्थैर्य धैर्य साहस के संग,
आज वृद्ध भी युवा बने हैं पाकर निज में नई उमंग।
मातृभूमि की रक्षा में हम सिर भी सहज कटा देंगे,
भू-दानी हैं, रहो लुटेरों, तुमको धूल चटा देंगे।

ऐसे आँख दिखाने से क्या हो सकती है ऊँची नाक?
पहले अपने को तो देखो, पीछे यहाँ जमाना धाक।
कब के प्रतिवासी होकर भी जान न पाए तुम हमको,
पाप-पुण्य जो नहीं मानते मानो अब अपने यम को।
हमें किसी का कुछ न चाहिए, हम अपना भी छोड़ें क्यों,
बिना बुलाया संकट आया उससे भी मुँह मोड़ें क्यों?
अटल रहे विश्वास हमारा सत्य धर्म पर हम आरूढ़,
आज नहीं तो कल लोलुप खल होंगे किंकर्तव्य-विमूढ़।

घर के साँप पंचमांगी हैं बाहर के रिपु से भी घोर,
आपस के मत-भेद भूलकर सजग रहें सब दोनों ओर।
हिंदू, जैन, बौद्ध वा सिख हैं मुसलमान या ईसाई,
अपने एक देश के नाते हम सब हैं भाई-भाई।
सावधान! साधन-सामग्री टूट न पावे आज कहीं,
तब है, एक दूसरे से जब कहला लें——अब और नहीं।

उत्पादन का हर्ष जहाँ हो वहाँ अधिक श्रम का क्या खेद,
रक्त दे रहे सुभट हमारे, हमें बहुत क्या अपना स्वेद।
बढ़ते हुए हमारे सैनिक पिछड़ा हमें न पावेंगे।
जो स्वदेश पर बलि जाते हैं हम उन पर बलि जावेंगे।
धन तो तन का मैल, किसे हैं आज स्वयं प्राणों का मोह,
गूँजे जीवन-गान एक रस क्या आरोह और अवरोह।
बाहर के बल का पूरक है सच्चा भीतर का बल ही,
शस्त्रों का कहना ही क्या, लड़ चुके निहत्थे हम कल ही।
भौतिक भूत नहीं कर सकता हमको अपने भय से मुक्त,
जीवन में स्वाधीन रहेंगे मर कर भी होंगे हम मुक्त।

अपने आप लिया रिपुओं ने न्याय-बुद्धि का यह अभिशाप,
यही बहुत, बैरी बन आया कटने को यह अपना पाप।
बलि देकर ही बल लेंगे हम भीम-भामिनी-भीमा से,
जो पर हैं वे रहें परे ही, हटें हमारी सीमा से।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ਅਜ ਅਸਾਡੀ ਗੰਗਾ ਜਮਨਾ ਪੰਚਨਦ ਤੇ, ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਾ ਅਤੇ ਗੋਦਾਵਰੀ ਦਾ ਹੜ੍ਹ ਟੁਟ ਪਿਆ ਹੈ,
ਪਰਜੇ ਸ਼ਰਮ ਹਿਆ ਹੈ ਕੁਝ ਵੀ ਸ਼ਤਰੂ ਅੰਦਰ, ਇਕ ਚੁਲੂ ਭਰ ਪਾਣੀ ਉਸਦੇ ਲਈ ਬੜਾ ਹੈ।
ਵੇਖੋ ਕੋਈ ਰਾਹ ਮਿਲੇ ਨਾ ਮੁੜਨੇ ਖਾਤਿਰ, ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਜੋ ਏਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਆਏ ਨੇ ਧਾਕੇ,
ਹੁਣ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਪੈ ਜਾਣੀ ਹੈ ਮੂੰਹ ਦੀ ਖਾਣੀ, ਭੋਰੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਮਨ ਵਿਚ ਲੱਡੂ ਵਿਉਂਤ ਬਣਾ ਕੇ।
ਸਮਾਂ ਜ਼ਰਾ ਮੁਸ਼ਕਲ ਹੈ ਐਪਰ ਅਸੀਂ ਦਿਰੜ ਹਾਂ, ਆਪਣੀ ਹਿੰਮਤ ਧੀਰਜ ਦੇ ਪੱਲੂ ਨੂੰ ਫੜਕੇ,
ਅਜ ਬੁਢਪਾ ਬਣਦਾ ਜਾਂਦਾ ਨਵੀਂ ਜਵਾਨੀ, ਕੋਈ ਨਵੀਂ ਉਮੰਗ ਦਿਲਾਂ ਦੇ ਅੰਦਰ ਧੜਕੇ।
ਅਪਣੀ ਮਾਤਰ-ਭੂਮੀ ਦੀ ਰਖਿਆ ਦੇ ਖਾਤਿਰ, ਹਸਕੇ ਅਪਣਾ ਸੀਸ ਤਕ ਵੀ ਅਸੀਂ ਕਟਾਉਣਾ,
ਭੂ-ਦਾਨੀ ਹਾਂ ਅਸੀਂ ਸੰਭਲਕੇ ਰਹੋ ਡਾਕੂਓ ! ਅੱਜ ਤੁਹਾਡੇ ਮੂੰਹਾਂ ਅੰਦਰ ਘੱਟਾ ਪਉਣਾ।

ਕੀ ਵਿਖਾਵੋਂ ਸਾਨੂੰ ਇੰਝ ਕੈਹਰੀਆ ਅੱਖਾਂ, ਇੰਝ ਤੁਹਾਡੀ ਨੱਕ ਨਹੀਂ ਉੱਚੀ ਹੋ ਸਕਦੀ,
ਪਹਿਲਾਂ ਇਹ ਤੇ ਵੇਖੋ ਤੁਸੀਂ ਅਸਲ ਵਿਚ ਕੀ ਹੋ, ਪਿਛੋਂ ਧਾਕ ਜਮਾਣਾ ਪਿਛੋਂ ਦੇਣਾ ਧਮਕੀ।
ਕਿੰਨੀ ਦੇਰ ਤੋਂ ਰਹਿਕੇ ਇਝ ਗੁਆਢ ਸਾਡੇ, ਹਾਲੀਂ ਤੀਕ ਤੁਸੀਂ ਸਾਨੂੰ ਪਹਿਚਾਨ ਨਾ ਪਾਏ,
ਪਾਪ ਪੁੰਨ ਲਈ ਥਾ ਨਹੀਂ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਦਿਲ ਵਿਚ, ਸਮਝਣਗੇ ਯਮਦੂਤ ਮੌਤ ਦੇ ਜਿਸ ਦਮ ਆਏ।
ਅਸੀਂ ਕਦੇ ਨਾ ਚਾਹਿਆ ਕੁਝ ਕਿਸ ਦਾ ਲਈਏ, ਆਪਣਾ ਹੱਕ ਛਡਣਾ ਪਰ ਮਨਜ਼ੂਰ ਨਹੀਂ ਹੈ,
ਬਿਨਾਂ ਬੁਲਾਇਆਂ ਜੋ ਸੰਕਟ ਸਾਡੇ ਤੇ ਆਇਆ, ਮੂੰਹ ਫੇਰੀਏ ਉਸ ਤੋਂ ਇਹ ਦਸਤੂਰ ਨਹੀਂ ਹੈ।
ਸਦਾ ਅਟਲ ਰਹੇਗਾ ਇਹ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਅਸਾਡਾ, ਸੱਤ ਧਰਮ ਵਿਚ ਪੱਕੇ ਅਸੀਂ ਚਟਾਨਾਂ ਵਾਂਗੂ,
ਅੱਜ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਕਲ ਲਾਲਚੀ ਦੁਸ਼ਮਣ ਸਾਡਾ, ਫ਼ਰਜੋਂ ਮੂੰਹ ਭੁਆਕੇ ਮਰੇ ਹੈਵਾਨਾਂ ਵਾਂਗੂ।

ਐਪਰ ਘਰ ਦੇ ਪੰਚ ਮਾਰੀਏ ਸੱਪ ਨੇ ਜਿਹੜੇ, ਬਾਹਰ ਦੇ ਸ਼ਤਰੂ ਤੋਂ ਵੀ ਡਾਢੇ ਹਾਤਆਰੇ,
ਝਗੜੇ ਛਡਕੇ ਸਤਰੂ ਨਾਲ ਯਾਰਾਨੇ ਗੰਢਦੇ, ਅਦਰ ਬਾਹਰ ਨਾਗਾਂ ਨੇ ਛੱਡੇ ਫੂਕਾਰੇ।
ਐਪਰ ਹਿੰਦੂ, ਸਿੱਖ, ਬੁੱਧ ਜਾ ਮਸਲਮਾਨ ਹੈ, ਤੇ ਜਾਂ ਕਿਧਰੇ ਨਜ਼ਰ ਆ ਰਿਹਾ ਕੋਈ ਈਸਾਈ,
ਸਾਰ ਵਾਸੀ ਏਸ ਦੇਸ਼ ਦੇ ਸਾਰੇ ਇਕੋ, ਸਾਰੇ ਇਕ ਦੂਜੇ ਦੇ ਲਗਦੇ ਭਾਈ ਭਾਈ।
ਸਾਵਧਾਨ ਰਹਿਣਾ ਕਿ ਹਣ ਸਾਮਾਨ ਦਾ ਸਾਧਨ, ਅਜ ਲੋੜ ਹੈ ਖਤਮ ਹੀ ਨਾ ਕਿਧਰੇ ਹੋ ਜਾਏ,
ਫੇਰ ਮਜ਼ਾ ਹੈ ਜਦ ਹਰ ਇਕ ਦੂਜੇ ਨੂੰ ਆਖੇ, ਬਸ ਕਰੋ ਹਣ ਲੋੜੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਨਜ਼ਰੀ ਆਏ।

ਜਿਹੜੇ ਥਾ ਉਤਪਾਦਨ ਦੀ ਇਕ ਖੁਸ਼ੀ ਜਿਹੀ ਹੈ ਉਸ ਥਾ ਮਿਹਨਤ ਕਰਨੋਂ ਕੀ ਕਿਸੇ ਘਬਰਾਉਣਾ,
ਅਜ ਸੂਰਮੇ ਯੋਧੇ ਸਾਡੇ ਖੂਨ ਦੇ ਰਹੇ, ਅਸੀਂ ਪਸੀਨਾ ਡੋਹਲਣ ਤੋਂ ਕੀ ਜੀ ਚੁਰਾਉਣਾ।
ਅਜ ਯੁਧ-ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਵਧਦੇ ਵੀਰ ਸਿਪਾਹੀ, ਵੇਖਣਗੇ ਕਿ ਪਿਛਲਿਆ ਨੇ ਪਿਛੇ ਨਾ ਰਹਿਣਾ,
ਜੋ ਕੁਰਬਾਨ ਜਾ ਰਹੇ ਅਜ ਦੇਸ ਦੇ ਉਤੋਂ ਅਸੀਂ ਉਹਨਾ ਦੇ ਨਾਂ ਤੋਂ ਅੱਜ ਕੁਰਬਾਨ ਹੋ ਜਾਣਾ।
ਧਨ ਦਾ ਕੀ ਹੈ ਧਨ ਤਾ ਐਵੇਂ ਮੈਲ ਹੱਥ ਦੀ, ਸਾਨੂੰ ਆਪਣੀ ਜਾਨ ਤਕ ਦੀ ਚਾਹ ਨਹੀਂ ਹੈ,
ਅੱਜ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦਾ ਗੂੰਜੇਗਾ ਗੀਤ ਅਨੋਖਾ, ਨਵੇਂ ਉਤਾਰ ਚੜ੍ਹਾਵਾ ਦੀ ਪਰਵਾਹ ਨਹੀਂ ਹੈ।
ਬਾਹਰਲੀ ਸ਼ਕਤੀ ਨੂੰ ਆਪੇ ਪੂਰੀ ਕਰਦਾ, ਜਿਹੜਾ ਸੱਚਾ ਬਲ ਹੈ ਸਾਡੇ ਦਿਲ ਦੇ ਅੰਦਰ,
ਸਾਨੂੰ ਕੁਝ ਹਥਿਆਰਾਂ ਦੀ ਪਰਵਾਹ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਅਸੀਂ ਕਲ ਹੀ ਬੜੇ ਬਣਾ ਹੱਥਾ ਨੂੰ ਖੰਜਰ।
ਇਹ ਮਾਦੇ ਦਾ ਭੂਤ ਵਿਗਾੜੇਗਾ ਕੀ ਸਾਡਾ, ਅਸੀਂ ਖੌਫ, ਭੈ ਕੋਲੋਂ ਤੇ ਮੁਕਤੀ ਪਾਈ ਹੈ,
ਅਸੀਂ ਆਜ਼ਾਦ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਮਤਵਾਲੇ ਆਸ਼ਕ ਮਰਕੇ ਵੀ ਆਜ਼ਾਦ ਰਹਿਣ ਦੀ ਸੌਂਹ ਖਾਈ ਹੈ।

ਅਜ ਦੁਸ਼ਮਣ ਨੇ ਅਪਣੇ ਸਿਰ ਤੇ ਆਪ ਲਿਆ ਹੈ, ਦੋਸ਼ ਨਵਾ ਸਾਰੇ ਹੀ ਜੱਗ ਦੇ ਨਿਆਂਕਾਰਾਂ ਦਾ,
ਚਲੋ ਬਹੁਤ ਹੈ ਇਹੋ ਅੱਜ ਵੈਰੀ ਬਣ ਆਇਆ, ਬਖਸ਼ਾਵਣ ਨੂੰ ਪਾਪ ਕਰੇ ਅਤਿਆਚਾਰਾਂ ਦਾ।
ਬਲੀ ਆਪਣੀ ਦੇਕੇ ਤੇ ਸ਼ਕਤੀ ਲੈਣੀ ਹੈ, ਸ਼ਕਤੀ ਸ਼ਾਲੀ ਸੈਨਾ ਦੇ ਯੋਧੇ ਭੀਮਾਂ ਤੋਂ,
ਦੂਰ ਨੇ ਜਿਹੜੇ ਦੂਰ ਰਹਿਣ, ਨੇੜੇ ਨਾ ਢੁਕਣ ਆਪੇ ਹੀ ਹਟ ਜਾਵਣ ਪਿਛੇ ਅਜ ਅਸਾਡੀ ਸੀਮਾ ਤੋਂ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जौहर

## रामधारी सिंह 'दिनकर'

बँगला अनुवाद : आनन्दमय दासगुप्ता

जगता तभी जहान,
उसे जब विपद जगाती है।
हँसी भूल बच्चे चिंतन करने लगते हैं।
बहनें जातीं डूब किसी गंभीर ध्यान में।
कुसुम खोजने लगते अपनी आग,
ऊँघती नदी तेज होकर हहराती है।
पेड़ उठा कर कान प्रलय की चरण-चाप सुनते हैं,
हवा झाँकने को भविष्य की आहट रुक जाती है
आर-पार अंबर के जब शम्पा चिल्लाती है।

भारत में जब कभी कड़कता वज्र
सती भामिनियाँ सहसा हो उठतीं निर्मम, कठोर।
दाँतों से अधर दबा,
आँखों का अश्रु रोक,
बलि-बेला की आरती, पुष्प, रोली सहेज,
पुरुषों को रण में भेज
चंडिकाएँ सगर्व
सिंदूर लेप घर-घर उमंग की शिखा सजाती हैं।
विजयी अगर स्वदेश,
प्रिया-प्रियतम का फिर नाता है।
विजयी अगर स्वदेश,
पुरुष फिर पुत्र, त्रिया माता है।

किंतु पताका झुकी अगर बलिदान की,
गरदन ऊँची रही न हिंदुस्तान की,
पुरुष पीठ पर लिए घाव रोते रहें,
आँसू से अपना कलंक धोते रहें।
पर, जातीय कलंक
देश की माताएँ सहतीं नहीं,
परंपरा है, चीख-चीख
वे पीड़ाएँ कहतीं नहीं।
हारे नर को देख
देवियाँ दबी ग्लानि के भार से—
जल उठती हैं, अगर
काट सकतीं न कंठ तलवार से।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# "জৌহর"

## রামধারি সিংহ দিনকর

অনুবাদ—আনন্দময় দাশগুপ্ত

পৃথিবী তখন জাগে
যখন বিপদ তাকে জাগায়।
শিশুদের হাসি যায় উবে, চিন্তার রেখা দেখা দেয়।
বোনেরা ডুবে যায় গম্ভীর ধ্যানে।
ফুলেরা খুঁজে বেড়ায় আগুন
ঘুমিয়ে থাকা নদী হঠাৎ জেগে ওঠে।
গাছেরা সজাগ হয়ে প্রলয়ের চরণ ধ্বনি শুনতে
থাকে।
হাওয়া ভবিষ্যতের ডাক শোনার তরে যায় থেমে
আকাশে দেখা দেয় ঝঞ্ঝাপাতের প্রলয় নিনাদ।

ভারতের আকাশে যখন বাজ ডাকে
সতী সাধ্বীরা হয়ে ওঠে নির্মম কঠোর।
ঠোঁট চেপে ধরে
চেপে ধরে চোখের জল
ফুল, কুমকুম দিয়ে সাজায় বিদায় বেলার আরতি
পুরুষদের যুদ্ধে পাঠিয়ে
চড়িয়া সগর্বে
সিঁদুর মেখে, খুশির দীপ জালায়।
জয়ী হয় যদি দেশ
প্রিয়া-প্রিয়তমের বাধন থাকে অটুট।
জয়ী হয় যদি দেশ
পুরুষ আবার সন্তান নারী হয়ে ওঠে আবার মাতা।

যদি বলিদানের পতাকা পড়ে লুটিয়ে
ভারতের মাথা যদি থাকে না উঁচু,
যদি পুরুষ পরাজয়ের যন্ত্রণায় কেঁদে ওঠে
যদি চোখের জলে ধুয়ে দেয় কলঙ্ক।
কিন্তু জাতীয় কলঙ্ক
সহিতে পারে না জননীরা,
কালের নিয়ম, নশব্দে
জাগায় না তাঁরা যন্ত্রণা।
পরাজিত পুরুষদের দেখে,
দেবীরা গ্লানিতে
জলে ওঠে, যদি
তলোয়ারের ধারে কণ্ঠ না দিতে
পারে বিসর্জন।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चेतावनी

हरिवंशराय 'बच्चन'
तमिल अनुवादः जमुना

भारत की यह परंपरा है--

जब नारी के बालों को खींचा जाता है,
धर्मराज का सिंहासन डोला करता है,
क्रुद्ध भीम की भुजा फड़कती,
वज्रघोष मणिपुष्पक औ' सुघोष करते हैं,
गांडीव की प्रत्यंचा तड़पा करती है;

कहने का तात्पर्य,
महाभारत होता है;

अगर कभी झूठी ममता,
दुर्बलता, किंकर्तव्यविमूढ़ता
व्यापा करती,
स्वयं कृष्ण भगवान प्रकट हो
असंदिग्ध औ' स्वतः सिद्ध
स्वर में कहते,
'युध्यस्व भारत !'

भारत की यह परंपरा है--
जब नारी के बालों को खींचा जाता है,
एक महाभारत होता है।

तूने भारत को केवल
रेखांश और अक्षांश जाल में

# 'எச்சரிக்கை'

ஹரிவம்ஷராய் 'பச்சன்'

தமிழ் மொழி பெயர்ப்பு : ஜமுனா

பாரதத்தின் பரம்பரை இது....
எப்பொழுது பெண்மணியின் கூந்தல்
இழுக்கப்படுகிறதோ,
தர்மபுத்திரரின் ஸிம்ஹாஸனம் ஆடுகிறது,
கோபமடைந்த பீமனின் புஜம் துடிக்கிறது,
மணிபுஷபகம் ஸுகோஷம் இடி ஓசை போல்
தொனிக்கிறது,
காண்டீவனின் வில்-நாண் ஒலிக்கிறது;
அதன் கருத்து,
பாரதப்போர் நடக்கிறது;
ஒருகால் பொய்ப் பற்று,
பலவீனம், மனத் தடுமாற்றம்
வந்தால்,
ஸ்ரீ கிருஷ்ண பகவானே முன் வந்து
ஐயமில்லாமல் பலனடைந்த
சப்தத்தில் உபதேசிப்பார்,
"பாரத மக்களே! போர் புரிவீர்!"
பாரதத்தின் பாரம்பரை இது—
எப்பொழுது பெண்மணியின் கூந்தல்
இழுக்கப்படுகிறதோ,
ஒரு பாரதப்போர் நடக்கிறது।
நீ பாரதத்தை வெறும்
பூரேகைகளால் கட்டப்பட்ட



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वद्ध चित्रपट समझ लिया है,
जिसकी कुछ शीर्षस्थ लकीरें,
जब तू चाहे, घटा-मिटाकर
अपने नक्शे में दिखला ले ?

हथकड़ियाँ कड़कड़ा, बेड़ियों को तड़काकर,
अपने बल पर मुक्त, खड़ी
भारत माता का
रूप विराट्
मदान्ध, नहीं तूने देखा है;

(नशा पुराना जल्द नहीं उतरा करता है।)
और न अपने भौतिक दृग से देख सकेगा।
आकर कवि से दिव्य दृष्टि ले।

पूरब, पश्चिम, दक्षिण से आ
अगम जलम्भर, उच्छल, फेनिल
हिंद महासागर की अगणित
हिल्लोलित, कल्लोलित लहरें

जिन्हें अहर्निश
प्रक्षालित करती रहती हैं,
अविरल,
वे भारत माता के
पुण्य चरण हैं--

पग-नखाग्र कन्या कुमारिका-मंदिर शोभित।
और
पूरबी घाट, पश्चिमी घाट
उसी के पीन, पुष्ट, दृढ़ जंघ-पाट हैं।
विन्ध्य-मेखला कसी हुई है कटि प्रदेश में।

वक्षस्थल पर गंगा-जमुनी हार झूलता --
कौसल-व्रज की
दुग्ध-धार से
राम-कृष्ण-बल-वैभव सिंचित,

வெள்ளித்திரை என நினைத்து,
அதன் ரேகைகளை,
எப்பொழுது வேண்டுமானாலும்,
குறைத்தோ-அதிகரித்தோ
படத்தில் காட்டுகிறாயே!
கைவிலங்கு கலகல என ஒலிக்க, விலங்கு
உடைபட,
தன் பலத்தால் முக்தி பெற்ற,
பாரத மாதாவின்
விசால ரூபத்தை
மதம் பிடித்தவனே, நீ பார்க்கவில்லை;
(பழம் போதை போகாது!)
உன் புறக்கண்ணால் பார்க்க முடியாது!
வா கவியிடம் திவ்ய ஒளி பெற்றுக்கொள்!
கிழக்கிலும், மேற்கிலும், தெற்கிலும்
ஜலம் நிறைந்த, நுரை நிறைந்த
இந்துமகா சமுத்திரத்தின் கணக்கில்லா
அலைகளும், திரைகளும்
அல்லும் பகலும்
கழுவுகின்றன,
நிரந்தரமாய்,
அவை பாரத மாதாவின்
புண்ய பாதங்களே—
பாதங்களின் நுனி அழகிய கன்யா குமரி
கோவில்।
இன்னும்
கிழக்கு மேற்கு மலைத் தொடர்கள்
அவள் வலிமையுள்ள கால்களே।
இடுப்பிலே விந்திய மலையை ஒட்டியாண
மாக அணிந்து
மார்பிலே கங்கை-யமுனை மாலைகளாக தவழ
கோசல நாட்டு இராமபிரானும் ஆயர்
குலத்து கிருஷ்ணரும்
பால் தாரையால்
பலம் பெற்றார்கள், அந்தப் பலத்தால


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव-धनु खंडित
रावण मर्दित,
इन्द्र विनिन्दित,
कंस विलुंठित—
व्यास कंठ में !

दक्षिणांक में
खड्ग और जौहर-ज्वाला का
राजस्थानी महा मरुस्थल दीप्तिमान हैं।

वाम बाहु आशीष और आरक्षण का
आश्वासन बन कर ब्रह्मपुत्र तक
फैल रहा है,
जिसके नीचे
लक्ष-लक्ष हल
गीतों की लय-गति पर चलकर
भू का अंचल
करते धानी, करते पीला,

और देख वह
भाल दिव्य, हिम-शुभ्र, सजीला,
जिसके ऊपर कश्मीरी केसर-क्यारी का
खौर लगा है;

औ' हिंदूकुश और हिमालय की
जो सघन शिला-वल्लरियाँ
उत्तर-पश्चिम, उत्तर-पूरब
दूर-दूर तक
छछड़ी, छिटकीं, बिखरी, फैलीं—

अमरनाथ-गौरीशंकर-कैलाश विचुंबित—
वे भारत माता के कंधों पर अवलंबित
उसकी अलकें, नाग-लटें हैं, वेणी-चोटी,
जो कि हमारी जीवित संस्कृति-परंपरा में
नारी के गौरव के
सबसे शीर्ष चिह्न हैं,

சிவ-தனுசும் உடைந்தது,
ராவணன் அழிந்தான்,
இந்திரன் அவமதிக்கப்பட்டான்,
கம்ஸன் உருண்டான் ।
பாரதத் தாயின் தொண்டையில் வியாசர்
வசிக்கிறார் ।
வலது மடியில்
வீரச் செயல்களால் பிரகாசிக்கிற
ராஜஸ்தான் சோபிக்கிறதே ।
அவள் இடது கரம் வாழ்த்தும் செய்கையில்
பிரம்மபுத்திரா நதி வரையில்
பரவி யுள்ளதே !
அக்கரத்தின் கீழ்
எண்ணிலடங்கா ஏர்கள்
பாட்டின் லயத்தோடு ஆடிப்பாடி
இப் பரந்த பூமியை
வளமாக்குகின்றன !
இன்னும் பார் ! அந்த
அழகிய, பனி போன்ற வெண்ணிற
நெற்றியை
காஷ்மீர் குங்குமப் பொட்டு
அலங்கரிக்கிறதே ;
ஹிமயமலைத் தொடர்கள்
சிலைக் கொடிகள் போல
வடமேற்கிலும் வடகிழக்கிலும்
வெகு தூரம் வரையில்
சிதறி கிடக்கின்றனவே
அமர்நாத், கௌரி-சங்கர் கைலாச மலை
முடிகளால் குலாவப்பட்ட
அலைகள் பாரதமாதாவின் தோள்களின்
மீது சாய்ந்திருக்கின்றனவே ।
கரு நாகம் போல அவள் கூந்தல்,
நமது கலாசார பாரம்பரையில்
பெண்மணியின் கௌரவத்தின்
சின்னம் என கூறப்படுமே,


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनकी लाज बचाने को,
इज़्ज़त रखने को,
मूल्य बड़ा से बड़ा
चुकाने को हम उद्धत ।

(फिर चालीस कोटि की माँ की
भव्य लटा की।)

तूने आज इन्हीं को छेड़ा है,
खींचा है,
किसी नशे में तू अपने से
बाहर चला गया है,
संयम इसीलिए हम
साध रहे हैं।

तुझे नहीं मालूम कि तूने
कितना भीषण और भयावह
काम किया है!

फिर कहता हूँ,
भारत की यह परंपरा हैं--
जब नारी के बालों को छेड़ा जाता है,
धर्मराज का सिंहासन डोला करता है,
क्रुद्ध भीम के बाहु फड़कते,
वज्रनाद मणिपुष्पक औ' सुघोष करते हैं,
गांडीव की प्रत्यंचा तड़पा करती है,
कहने का तात्पर्य,
महाभारत होता है;

अगर कभी थोथी ममता,
दुर्बलता, किंकर्तव्यविमूढ़ता
व्यापा करती,
स्वयं कृष्ण भगवान् प्रकट हो
असंदिग्ध औ' स्वतः सिद्ध
वाणी में कहते
'उत्तिष्ठ युध्यस्व भारत!'

அதன் மானத்தைக் காப்பாற்ற,
மகிமையைக் காப்பாற்ற,
என்ன வேண்டுமானாலும்,
நாங்கள் தருகிறோம்।
(நாற்பது கோடி மக்களின் தாயின்
மயிர்ச்சுருளை)
நீ கலைத்திருக்கிறாய்,
இழுத்திருக்கிறாய்,
எதோ ஒரு போதையில் நீ
உன்னை மறந்திருக்கிறாய்,
அதனால் தான் நாம்
பொறுத்திருக்கிறோம்।
தன்னை அறியாமல் நீ
மகா பயங்கரமான
வேலையைச் செய்திருக்கிறாயே!
மறுபடியும் சொல்கிறேன்,
பாரதத்தின் பரம்பரை இது—
எப்பொழுது பெண்மணியின் கூந்தல்
இழுக்கப்படுகிறதோ.
தர்மபுத்திரரின் ஸிம்ஹாஸனம் ஆடுகிறது,
கோபமடைந்த பீமனின் புஜம் துடிக்கிறது,
மணிபுஷ்பகம் ஸுகோஷம் இடி ஓசை போல
தொனிக்கிறது,
காண்டீவனின் வில்-நாண் ஒலிக்கிறது,
அதன் கருத்து,
பாரதப் போர் நடக்கிறது;
ஒரு கால் பொய்ப் பற்று,
பலவீனம், திக்பிரமை
ஏற்பட்டால்,
ஸ்ரீ கிருஷ்ண பகவானே முன் வந்து
ஐயமில்லாமல் பலனடைந்த
சப்தத்தில் உபதேசிப்பார்,
"பாரத வாசியே! எழுந்திரு, யுத்தம்
செய்!"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आह ह्वेनसांग

## नन्द चतुर्वेदी

—गुजराती अनु० : मनमोहिनी

पारिजात के वन बारूद की गंध से महक रहे हैं
प्रत्येक देवदारु के नीचे मृत्यु निश्शंक खड़ी है
ह्वेनसांग ! क्या तुम इन्हीं मार्गों से आए थे

इस पीढ़ी के बालकों ने इतिहास से उन सब पृष्ठों को फाड़ दिया है
जहाँ तुम्हारे देश का नाम लिखा है
तुम्हारी आकृति पर न जाने किन काले-पीले या नीले
रंग के चिह्न अंकित कर दिए हैं

आह ह्वेनसांग ! उन्हें अब यह समझाना कठिन हो गया है कि
तुम कोई आक्रान्ता नहीं थे
केवल यायावर थे !

सुनो ह्वेनसांग घृणा विष है
और वह फैल रहा है
युवक इन दिनों प्रेम, शृंगार और युवतियों की बातें नहीं करते हैं,
वयस्क और वृद्ध तेज चलते हैं
तीखे बोलते हैं और अकारण छड़ियाँ घुमाते हैं
युवतियाँ कुछ भिन्न प्रकार से जूड़े कसती हैं

जनता एक अनभिव्यक्त व्यथा, आक्रोश और प्रतिशोध
मुट्ठियाँ तान तान कर व्यक्त करती है



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# આહ હ્વેનસાંગ

## નન્દ ચતુર્વેદી

ગુજરાતી અનુ૰ મનમોહિની

પરિજાત નાં વન બારૂદની ગંધથી મહકે છે.
પ્રત્યેક દેવદારૂની છાયામાં મૃત્યુ નિઃશંક ઊભી છે.
હ્વેનસાંગ ! તમે આ જ માર્ગથી આવ્યાતા ?

આ પીઢી ના બાલકો ઇતિહાસમાંથી એ પાના સર્વે ફાડી નાખ્યા છે
જ્યાં તમારા દેશનું નામ લખેલું.
તમારી આકૃતિ પર અણપ્રીછ્યા કો કાળા પીળા કે વાદળીયા
ચિહ્ન લગાવી દીધા છે.

આહ હ્વેનસાંગ ! નથી તેમને સંમજાવી શકતા
કે તમે કોઈ આક્રાન્તા નો તા
માત્ર યાયાવર હતા.

હ્વેનસાંગ ! ઘૃણા ઝેર છે
અને તે જ. પ્રસરાતું જાય છે
યુવકો શ્રૃંગાર, પ્રેમ અને યુવતીયોની વાતો નથી કરતા
વયસ્કો અને વૃદ્ધો વેગથી ચાલે છે.
કડવું બોલે છે અને અકારણ સોટીઓ ઘુમાડે છે
યુવતીયો જુદા પ્રકારના અમ્બોડા વારે છે

જનતા એક અવ્યક્ત વ્યથા, આક્રોશ અને પ્રતિશોધ ને
મુઠ્ઠીઓ તાણીતાણીને વ્યક્ત કરે છે



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध को सब श्रद्धा से नमस्कार तो करते हैं
लेकिन बन्दूक चलाने की दीक्षा लेते हैं
क्योंकि वे छले गए हैं

आह ह्वेनसांग! माओ-त्से-तुंग ने सेतु नहीं बनाए हैं
उन्होंने अत्यधिक निरर्थक इतिहास की सरणियाँ दुहराई हैं
क्योंकि उन्हें यह नहीं मालूम कि इतिहास की स्याही रक्त नहीं है

हिन्दुस्तान ने युद्ध लड़े हैं ह्वेनसांग
किंतु वे युद्ध ही थे
अब युद्ध और घृणा दोनों हैं

युद्ध याद नहीं रहते
लेकिन घृणा
घायल सर्प है
जो इतिहास के द्वार पर बार-बार
आहत फन पटकता है
और जनता शस्त्र उठाती है

तुम भारत से अपरिचित नहीं हो ह्वेनसांग!
उसका आकाश अभी भी स्वच्छ और नीला है
लेकिन भविष्य की अनेक पीढ़ियों की शिराओं में
यह जो घृणा का रक्त बहेगा
उसका दायित्व कौन संभालेगा!

दुःख ह्वेनसांग!
जब बंदूकें उठती हैं
लोग बुद्ध को भूल जाते हैं।

● ●



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

લોકો ભગવાન બુદ્ધને શ્રદ્ધાથી નમસ્કાર કરે છે
છતાં બન્દુક દાગવાની દીક્ષા લે છે
કારણ, તેને જોડે વિશ્વાસઘાત થયુ છે.

આહ હ્વેનસાંગ ! માઓ-ત્સે-તુંગે સેતુ નથી બાંધ્યા
નિરર્થક ઇતિહાસની સરણીયોનું પુનરાવર્તન કીધુ છે,
તેઓને ખબર નથી કે ઇતિહાસની શાહી રક્ત નથી.

હ્વેનસાંગ ! ભારતે યુદ્ધ લડ્યા છે
પણ તેં માત્ર યુદ્ધ હતા
હવે યુદ્ધ અને ઘૃણા બેઉ છે.

યુદ્ધ તો વિસરી જાય
પણ ઘૃણા
ઘાયલ સર્પ છે
એ ઇતિહાસને બારણે
વારંવાર આહત ફણ પટકે છે.
જનતા શસ્ત્ર ધારે છે

તમે ભારતથી અજાણ્યા નથી હ્વેનસાંગ
એના આક્રોશ હજીએ સ્વચ્છ નીલિમાં પ્રસરાઈ છે
પણ ભવિષ્યની કેટલીય પીઢીયોની શિરોઓમાં
જે ઘૃણાનો રક્ત પ્રવાહિત થશે
એનો દાયિત્વ કોણ લેશે ?

દુઃખ છે હ્વેનસાંગ !
જ્યારે બંદુકો ઊઠે છે
લોકો બુદ્ધને વિસરી જાય છે.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

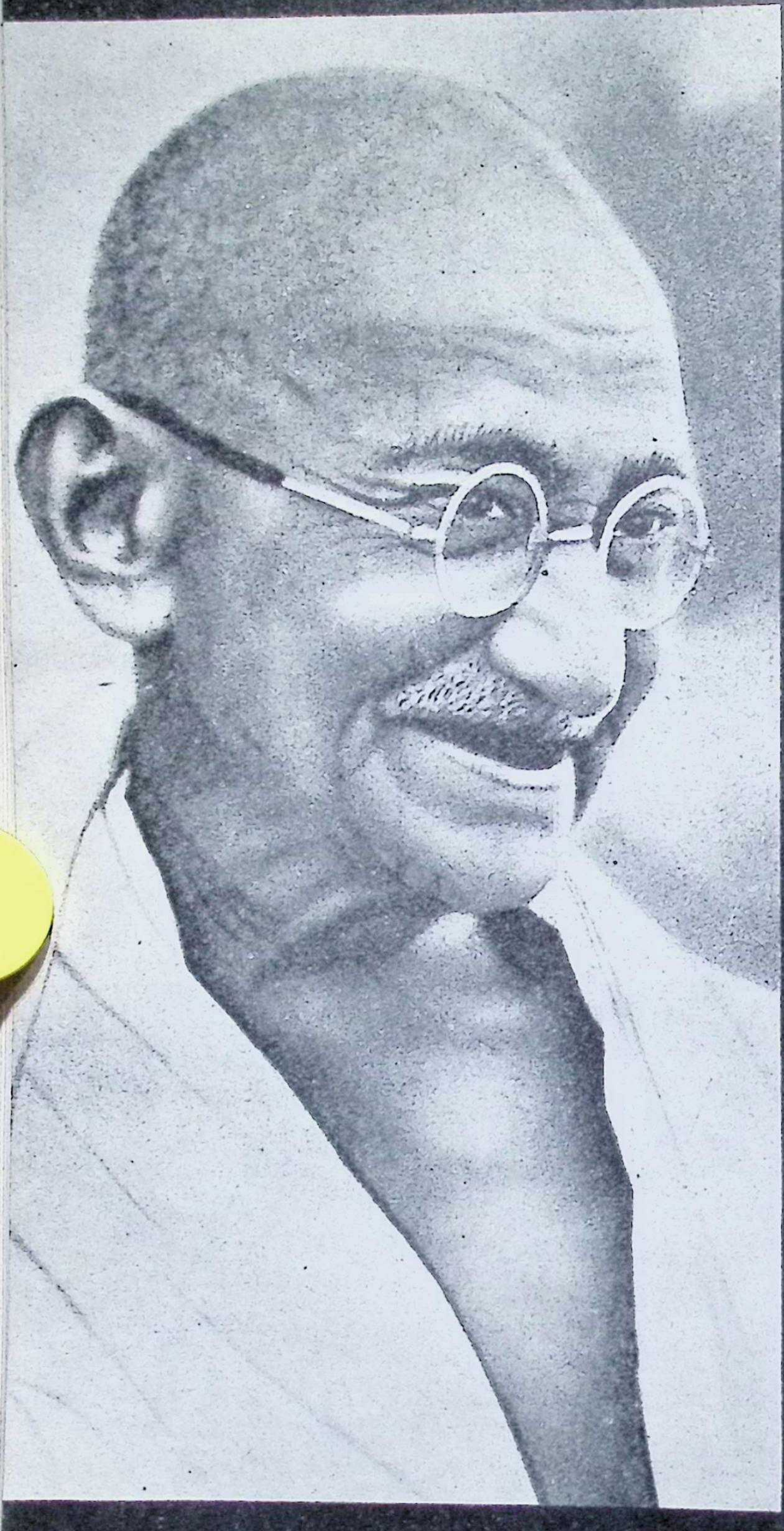

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कायर की तरह असहाय रहकर स्वदेश का अपमान सहने के बजाय मैं इसे ज्यादा पसंद करूंगा कि हिन्दुस्तान अपने सम्मान की रक्षा के लिए हथियार उठाए।

- महात्मा गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

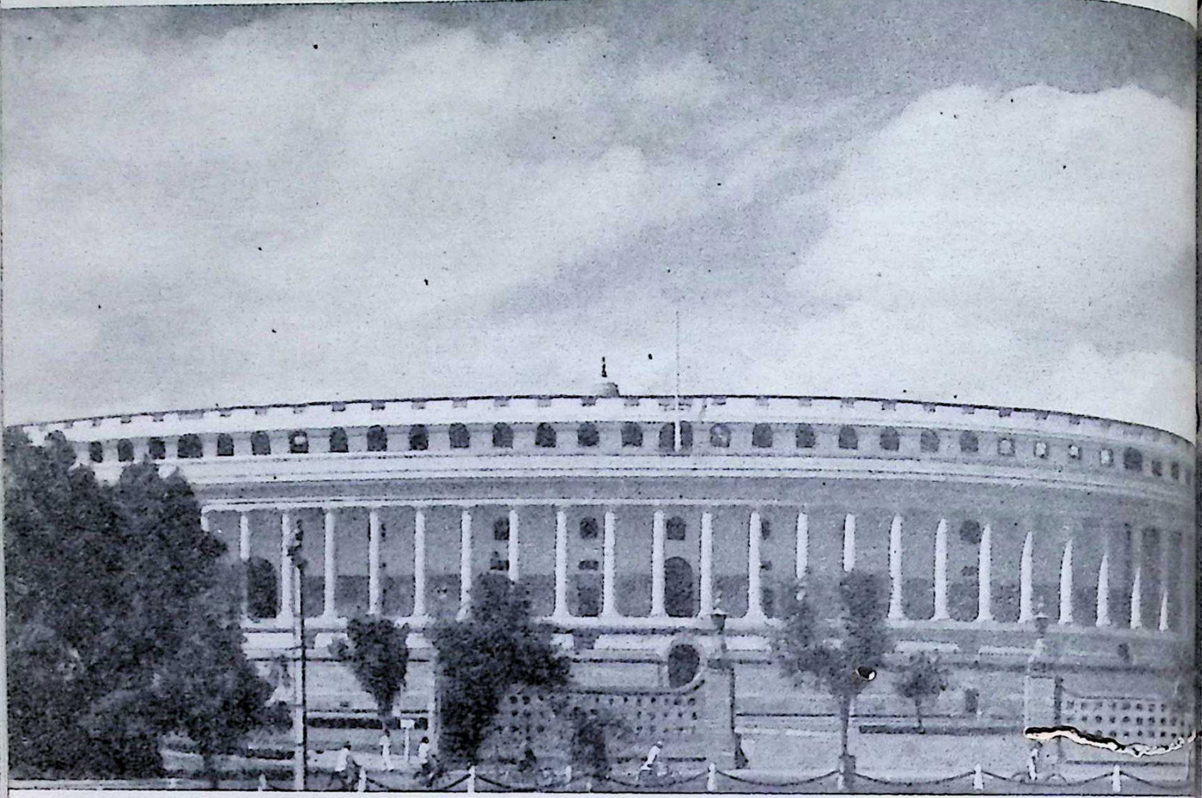

# हमारा संकल्प

"यह सदन आशा तथा विश्वास के साथ तमाम भारतवासियों द्वारा आक्रांता को भारत की पुण्यभूमि से खदेड़ निकालने के दृढ़-संकल्प की पुष्टि करता है— यह संघर्ष चाहे जब तक चले और चाहे जितना कठिन हो।"

—संसद् द्वारा नवंबर, 1962 में पारित एक संस्ताव से।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# लेखक का दायित्व

आज सीमा पर संकट आ पड़ा है और भारतीय जीवन में एक विक्षोभ, एक सार्वदेशिक प्रतिक्रिया दिखाई दे रही है। ऐसे समय देश का सबसे संवेदनशील वर्ग कैसे मौन रह सकता है? लेखकों में प्रतिक्रिया हुई। साहित्यकारों ने आततायी के प्रति अपनी लेखनी का रौद्र-रूप दिखाया। गो इस समय लिखी अनेक कविताएँ एक नारा बन कर रह गईं, पर उनका सामयिक महत्त्व तो है ही। इस विषम स्थिति में साहित्यकार के दायित्व पर देश के प्रतिष्ठित लेखकों के विचार यहाँ प्रकाशित किए जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आज का परिवेश और साहित्यकार का दायित्व

हिंदी

बालकृष्ण राव

आज साहित्यकारों की सभाओं में 'शुद्ध' साहित्यिक विषयों की अपेक्षा चर्चा और विचार-विनिमय के लिए उपयुक्त सामाजिक-राजनीतिक विषय प्रायः वह माना जाता है जिस पर मैं इस समय लिखने बैठा हूँ। पिछली जनवरी के अंतिम दो दिनों का प्रयाग का "भारतीय लेखक सम्मेलन" (जिसका, महादेवी जी के साथ, मैं स्वयं ही संयोजक था) विशेष रूप से इसी विषय पर विचार करने के लिए आयोजित हुआ था। उसके बाद कलकत्ते के स्वाधीन साहित्य समाज के तत्वावधान में इसी विषय की चर्चा के लिए एक अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन बुलाया गया था। इसमें भाग लेने और इस विषय की चर्चा के लिए आयोजित बैठक में विषय-प्रवर्तन करने का मुझे अवसर मिला था। लगता है कि इन दिनों भारत के साहित्यकारों को अपने किसी विशिष्ट दायित्व के बोध से एक बेचैनी, एक अकुलाहट होने लगी है। ऐसा न होता तो इस विषय की चर्चा के लिए बार-बार एकत्र होने की आवश्यकता ही क्या थी?

साथ-साथ यह भी स्पष्ट है कि साहित्यकारों की इस बेचैनी का कारण यह है कि उन्हें यह जान पड़ने लगा है कि उस सामान्य दायित्व के अतिरिक्त, जो अन्य देशवासियों की भाँति उनका भी है, ऐसा कोई विशिष्ट दायित्व या कर्तव्य भी है जो उनका अपना है, जिसे जाने-समझे-स्वीकारे-निबाहे बिना वे कर्तव्यच्युत हो रहे हैं। इसी विशिष्ट दायित्व और कर्तव्य की खोज इन सभी लेखक-सम्मेलनों को सार्थकता प्रदान करती है, इन सारी चर्चाओं को एक निश्चित लक्ष्य की ओर जाने की प्रेरणा देती है।

प्रश्न यह है कि क्या आज के परिवेश में साहित्यकार का कोई विशिष्ट दायित्व है? और इस प्रश्न के उत्तर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की खोज आरम्भ करने से पहले हमें यह निश्चय करना पड़ेगा कि "आज के परिवेश" से हमारा अभिप्राय क्या है, आज की किन समस्याओं को हम इसके अंतर्गत मानते हैं, किन प्रश्नों के उत्तर आज के साहित्यकार से अपेक्षित हैं ?

साधारणतया "आज का परिवेश" राजनीतिकों की "संकट-कालीन स्थिति" का ही साहित्यिक नाम मान लिया जाता है। इधर जो लेखक-सम्मेलन आयोजित हुए हैं उनके पीछे प्रेरक शक्ति के रूप में विशेषतया इसी चीनी आक्रमण के कारण उत्पन्न "संकट की स्थिति" का बोध ही काम करता रहा है। और यह स्वाभाविक ही नहीं, अनिवार्य था। चीनी आक्रमण के फलस्वरूप देश को जिस प्रकार का आघात लगा, जो शंका और आशंका राष्ट्र-मानस में उत्पन्न हुई, उसका यही परिणाम हो सकता था कि समाज का सर्वाधिक संवेदनशील वर्ग कुछ कहने-करने की आवश्यकता का बहुत ही तीव्र अनुभव करने लगता। चीनी आक्रमण को लेकर लिखी कविताओं और कहानियों की बाढ़ व्यक्तियों और वर्गों के वक्तव्य और घोषणाएँ और ये अनेक साहित्यकार-सम्मेलन इसी तीव्र अनुभूति के प्रमाण हैं।

पर क्या साहित्यकार के कर्तव्य के संदर्भ में "आज का परिवेश" यही, इतना ही, है ? मैं ऐसा नहीं समझता। प्रत्येक व्यक्ति, वह साहित्यकार हो या न हो, नागरिक भी है, और उनके सारे विशिष्ट दायित्वों के अतिरिक्त जो साहित्यकार होने के कारण उसके दायित्व बन जाते हैं, उसके अनेक नागरिक दायित्व भी हैं जिनसे वह इंकार नहीं कर सकता। राष्ट्रीय रक्षा-कोष में रुपया लगाना, चंदा जुटाना, सेना में भर्ती होना या कराना, ये सारे देश के संकटकालीन स्थिति से संबंधित नागरिक कर्तव्य हैं। कोई साहित्यकारों की टोली यदि लेखकों-प्रकाशकों के पास जा-जाकर राष्ट्रीय-रक्षा-कोष के लिए चंदा जमा करती है तो वह भले ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक कार्य कर रही हो, भले ही अपनी देशभक्ति का परिचय दे रही हो, वह कोई ऐसा दायित्व पूरा नहीं करती जिसे हम साहित्यकार का विशिष्ट दायित्व कह सकें। ऐसी स्थिति आ सकती है जिसमें साहित्यकार का नागरिक रूप ही सक्रिय रह सके, उसका साहित्यकार रूप सुषुप्त हो जाए, और यह आवश्यक नहीं है कि किसी स्थिति विशेष में काव्य-रचना की जगह कवायद करना, कवि की अपनी दृष्टि में भी और समाज की दृष्टि में भी, उच्चतर कर्तव्य हो जाए। पर मात्र उच्चतर अथवा अधिक समयानुकूल होने से ही कवायद करना वाक्य-रचना का स्थान नहीं ले लेता। एक दूसरे से उच्चतर हों या निम्नतर, साहित्यिक दायित्व नागरिक दायित्व से भिन्न अवश्य है। बहुतेरी चीन-विरोधी कविताओं की तुलना में एक जोशीले कवि की यह पंक्ति भुलाए नहीं भूलती — "चीनियों को भारत की चींटी-चाट जाएगी।"

उन सहस्रों की संख्या में तेजी से चारों ओर उड़ती हुई पत्तियों से की जा सकती है आँधी के वेग का प्रत्यक्ष प्रमाण मात्र जो आँधी को प्रेरित या चालित नहीं करतीं, प्रस्तुत करती हैं।

पर ऐसी रचनाओं की उत्कृष्टता या निकृष्टता के आधार पर ही यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि उनके द्वारा उनके रचयिताओं ने अपने साहित्यिक दायित्व के बोध का परिचय दिया है अथवा अपनी व्यावसायिक बुद्धि का। मेरी स्थापना तो यह है कि सामाजिक परिस्थिति-विशेष से संबंधित साहित्य-रचना साहित्यकार के जागरूक नागरिक होने का प्रमाण तो निश्चयपूर्वक मानी जा सकती है पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनके द्वारा और कुछ भी अनिवार्यतः प्रमाणित हो ही जाता है।

इस लंबी भूमिका के बाद मैं उस परिपत्र का एक अंश यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा, जिसके आधार पर महादेवी जी ने और मैंने गत जनवरी में प्रयाग में उस भारतीय लेखक सम्मेलन की संयोजना की थी जिसका मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ। अपने परिपत्र में हमने कहा था :

"...............आज भारत का प्रत्येक साहित्यकार यह अनुभव करता है कि सामान्य नागरिक के रूप में उसे जिस भूमिका में समाज के मंच पर अवतरित होना और कार्य करना है, उसके अतिरिक्त साहित्यकार के रूप में भी उसे अपना दायित्व निभाना है। साहित्यकार सदा अपनी सहज संवेदनशीलता, अपनी भावप्रवलता, अपने कृतित्व की प्रभविष्णुता के प्रति आस्थावान रहा है। आत्म-विश्वास उसका संबल है, समाज के सांस्कृतिक उन्नयन की क्षमता उसकी शक्ति है। साहित्यकार बौद्धिक स्तर पर अपने को समाज का मार्ग-प्रदर्शक मानता है, पर उस अर्थ में



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जिस अर्थ में राजनीतिज्ञ, विज्ञान-वेत्ता या दर्शन-शास्त्री। साहित्यकार की बौद्धिकता, उसकी संवेदना और भावप्रवलता से पृथक् नहीं हो सकती, देश-काल निरपेक्ष नहीं हो सकती। संवेदना ही अंततः साहित्यकार की बौद्धिकता को प्रेषणीयता और सार्थकता प्रदान करती है, उसे "साहित्यकार" बनाती है।

"...........आज हम भारतीय साहित्यकारों का यह प्रथम कर्तव्य है कि अपने नवीन राष्ट्रोन्मेष को पूर्णतः प्रबुद्ध करने में अपनी उस विशिष्ट प्रतिभा का, अपनी लेखनी की उस शक्ति का उपयोग करें जिस पर हमें इतनी आस्था और जिसका हमें इतना अभिमान है।"

वास्तव में आज भारत के साहित्यकार का इससे बड़ा या ऊँचा दायित्व हो ही क्या सकता है कि वह राष्ट्र के उद्बोधन में योगदान करे? भारत की राष्ट्रीय जागृति, उसके राष्ट्रीय स्वाभिमान की चेतना, अंततः उसके नागरिकों की जागृति और स्वाभिमान के बोध पर निर्भर है। यदि हमें सचमुच अपने देश, अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के प्रति प्रेम और आदर है, यदि हम सचमुच यह चाहते हैं कि इनकी रक्षा के लिए हमें जो कुछ भी करना और सहना है उसे करें और सहें, तो हमें प्रेरणा देने के लिए चीन-विरोधी प्रचार की अपेक्षा न होगी, देश के शत्रु का विरोध हमारे लिए सहज, स्वाभाविक, अनिवार्य हो जाएगा।

साहित्यकार राजनीतिक नेता का अनुयायी बनकर कभी सच्चे अर्थ में देश और समाज के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा नहीं कर सकता। साहित्य का राजनीति से कोई भी संबंध हो यह कदापि अनिवार्य नहीं है। आज भारत के ही नहीं संसार के सभी देशों के सामने, कहना चाहिए कि आधुनिक सभ्यता के सामने, राजनीति का आतंक एक बहुत बड़ी समस्या है। साम्यवादी देशों ने तो यह स्वीकार ही कर लिया है कि साहित्य और संस्कृति राजनीतिक लक्ष्य सिद्धि में सहायक हों, यही उनका धर्म है, इसी में उनकी सार्थकता है। जनतंत्रात्मक राष्ट्रों ने यह स्वीकार नहीं किया। वे राजनीति को व्यक्ति और समाज के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आच्छादित करने वाली घनघटा नहीं मानते। पर वे भी, जाने-अनजाने, व्यवहार में साहित्य, संस्कृति और दर्शन की सार्थकता राजनीतिक लक्ष्यों की सिद्धि में ही मानने लगते हैं। भारत के साहित्यकार को साहित्य की राजनीति-निरपेक्ष सत्ता स्वीकार करनी और करानी है। उसे राजनैतिक कार्यकर्त्ता का अनुयायी नहीं, मार्गदर्शक नेता बनना है—और यह वह तभी बन सकता है जब वह अपने को पूरी तरह सहज, स्वाभाविक बन जाने दे। वह जितना ही सहज बनेगा उतनी ही निकटता से वह अपने राष्ट्रीय दायित्व को देख और समझ सकेगा, क्योंकि भारत के साहित्यकार का सहजतम रूप ही अनिवार्यतः उसका शुद्धतम भारतीय रूप होगा और आज हमें सबसे अधिक आवश्यकता इसी की है कि हम अपने सच्चे भारतीय रूप को पहचानें, अपनाएँ। इसी रूप में समाज के अन्य सभी वर्गों की अपेक्षा साहित्यकार सर्वाधिक राष्ट्र-सेवा कर सकता है। राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने हमें राजनीतिक दासता से मुक्ति दिला दी, नैतिक और बौद्धिक दासता से देश को मुक्त कराना आज साहित्यकार का दायित्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी

# साहित्यकारों को हिमालय की पुकार

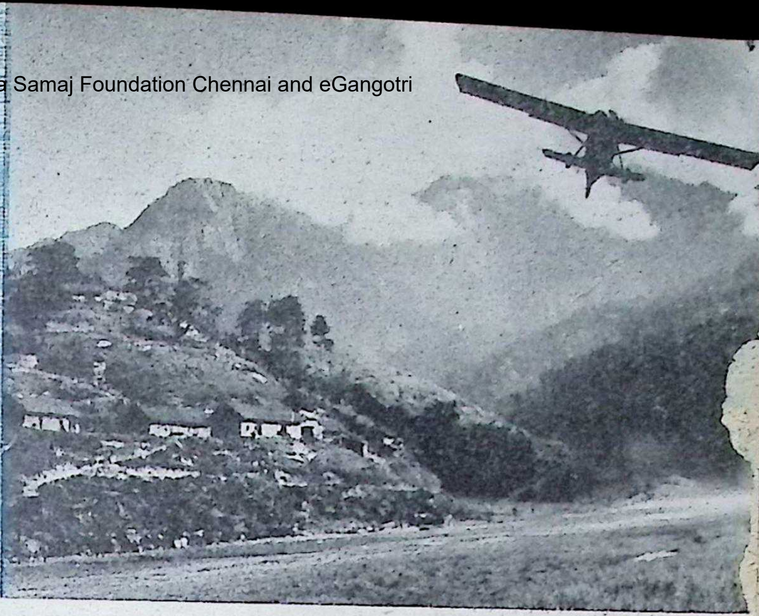

**जनार्दन बाघमारे**

भारत की उत्तरी सीमा पर चीन द्वारा किया गया आक्रमण विश्व के इतिहास में अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। युगों-युगों से हिमालय ने हमारी उत्तरी सीमाओं की रक्षा की है। "पासवाँ अपना है तू, दीवारे हिंदोस्तां है तू"—इन शब्दों में इकबाल ने उसकी स्तुति की है, लेकिन आज उसी हिमालय की उत्तरी सीमा पर संकट आ पड़ा है, शायद इसीलिए उसनें भारत की समस्त पर्वतश्रेणियों तथा प्रस्तर खंडों को आह्वान किया है कि वे उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ें। ऐसा भीषण संकट उस पर कभी नहीं आया। जन्म और मृत्यु के प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए ही, आज तक उसने समाधि लगाई थी। भूमि पर दार्शनिक मुद्रा में खड़ा होकर वह आज तक आकाश से वार्तालाप करता रहा है। ऐसे चिंतन मनन से प्राप्त आध्यात्मिक तत्वज्ञान उसनें भारत को दिया। उसने प्रत्येक भारतीय को यही पाठ पढ़ाया कि "मानव मात्र मेरे मित्र हैं और संपूर्ण वसुधा मेरा कुटुंब है।" यही सिद्धांत हम अपने आचरण में उतारते रहे। हमें अपनी दो बातों पर सदैव ही बड़ा अभिमान रहा : एक तो हमारा उत्तुंग हिमालय और दूसरी, हमारी हिमालय जैसी ही ऊँची संस्कृति। हिमालय ने हमें संस्कृति दी, साहित्य दिया। उसने हमें हमारे साहित्यकारों को शब्द ब्रह्म की उपासना करने की प्रेरणा दी। और हमें उसी ने वैदिक वाणी का वरदान दिया ताकि हम सत्यं शिवं सुन्दरम् के विराट गीत गा सकें। शताब्दियों से हमारे देश के कवि एवं साहित्यकार उसी की प्रेरणा से काव्य एवं साहित्य की रचना करते आए हैं। इसीलिए आज भी भारतीय साहित्यकारों ने अपने-अपने काव्य-पुष्प अर्पित करके हिमालय की वाक्-पूजा प्रारम्भ कर दी है। उन्होंने हिमालय की पुकार सुनी है, समझी है। उनकी प्रतिभा रूपी जटाओं से वीररस की गंगा प्रवाहित हो रही हैं।

भारत ने चीनी आक्रमण की चुनौती को स्वीकारा है और अपनी अंतिम विजय के लिए हर मोर्चे पर दुश्मन का मुक़ाबला करने के लिए कमर कस कर तैयार है। इस युद्ध में कवि और लेखक भी उतर रहे हैं। उनकी वाणी में बिजली की चमक और तलवारों का पानी उतर आया है। साहित्यिक भी अन्ततः अपने देश का सेवक और सैनिक होता है। मातृभूमि की रक्षा, उसकी स्वतंत्रता के लिए, शत्रु से डटकर टक्कर लेना उसका भी कर्तव्य है। ऐसे युद्धों के द्वारा ही वह देश के इतिहास एवं सारस्वत-क्षेत्र में अपना नाम अमर करता है। कवि के शब्दों में असीम शक्ति होती है। अग्नि और बादल दोनों का समन्वय उसमें होता है। उसमें अग्नि को धधकाने के लिए एक स्फुलिंग ही पर्याप्त होता है, और एक बार जल उठने पर, शतशत जिह्वाओं से, पृथ्वी पर तथा आसमान में अंगारे बरसने लगते हैं। इस आँधी के शुरू होते ही सृष्टि में तांडव नृत्य होने लगता है और उसके पैरों तले असुरों का संहार होता



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस प्रलय के पश्चात ही नूतन जगत का निर्माण होता है। फिर, नई आस्था से, समय देवता अपनी यात्रा पर आगे बढ़ता है। साम्राज्यों के निर्माण तथा विनाश की शक्ति कवि की वाणी में होती है। इसीलिए हिंदुस्तान की बादशाहत के बदले में भी शेक्सपियर को छोड़ने का सौदा कार्लाइल को मंजूर नहीं था।

कवि अथवा-लेखक को शब्द-सृष्टि का ईश्वर कहा जाता है, और इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं। नूतन सृजन के लिए जीर्ण जगत का विनाश ईश्वर को भी करना पड़ता है।

इतना ही नहीं, नई सृष्टि का रक्षण एवं पालन पोषण भी करना पड़ता है, इसीलिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन तीन रूपों में ईश्वर की कल्पना की गई है। शब्द-सृष्टि का ईश्वर होने के नाते कवि के भी तीन रूपों की धारणा की जाती है। उसकी लेखनी एवं वाणी को, कभी-कभी रुद्रावतार धारण करना पड़ता है। अपने शब्दों के माध्यम से क्रांति करने के लिए वह प्रयत्नशील होता है। ठीक ऐसी ही वैचारिक क्रांति लाने का स्वप्न अँग्रेजी कवि शैली ने देखा था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अपने कविताओं में तूफ़ानी ताक़त लाने का प्रयास किया। वाणी का यह प्रचंड गर्जन-तर्जन विनाशक भी होता है और संरक्षक भी। इसी सामर्थ्य के बल पर वह पुराने की समाप्ति और नए का निर्माण करता है।

शैली की कवि कल्पना और हिंदुओं की ईश्वर विषयक कल्पना—दोनों एक दूसरे से मिलती जुलती हैं। यह एक स्वयं सिद्ध प्रमेय है कि कवि को कभी-कभी रुद्रावतार भी लेना पड़ता है। पहले उस विशिष्ट काल की परिस्थितियाँ एवं परिवेश साहित्यकार को प्रेरित करते हैं और फिर वह अपनी वाणी से समाज को स्फूर्ति देता है। ऐसे ही क्षणों में कोई **'कुसुमाग्रज'** (मराठी के क्रांतिकारी कवि) गाने लगता है **"क्रांति की जयजयकार करो, क्रांति की जय शत बार कहो"** और फिर वही गीत शतशत कंठों से दोहराया जाता है, और जनमानस क्रांति के लिए तैयार होता है। फिर कोई एक **"नवीन"** आवाहन करता है :—

**कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ**
**जिससे उथल पुथल मच जाए**

**एक हिलोर इधर से आए**
**एक हिलोर उधर से आए**

स्वतंत्रता की रक्षा के लिए, हृदय में क्रांति की ज्वाला धधकाए वीर आगे बढ़ते हैं। कविता की एक हिलोर इधर से आती है, और एक हिलोर उधर से, और इस तरह क्रांति का वातावरण तैयार होता है। उस वातावरण में शूरवीर मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने के लिए तत्पर होते हैं। उनके पद चिह्नों पर चलने की आकांक्षा कितने ही हृदयों में मचलती है। न जाने कितने, उनके चरणों तले की धूल बनने के लिए ही बेचैन होते हैं। और ऐसे समय माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा) फूलों को भी प्रेरणा देते हैं। फिर वह फूल अपने माली से प्रार्थना करता है :—

**मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक**
**मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएँ वीर अनेक**

क्रांति के ऐसे प्रहर में, हर एक कण और प्रत्येक क्षण देशभक्ति से पागल होकर, बलिदान के गीत गाता है। ऐसे में, जो कवि मातृभूमि से दूर होते हैं, वे अपने मन की व्यथा सागर की लहरों को सुनाते हैं। ऐसे युग में वीररसपूर्ण एवं उच्च आदर्शों से युक्त काव्य तथा साहित्य का सृजन होता है। हर एक कवि की हर एक कविता साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ बन पड़े, यह जरूरी नहीं। लेकिन यह एक अनुभूत सत्य है कि आन्तरिक प्रेरणा प्रत्येक में मिलती है। ऐसे जीवन्त क्षणों में किसी श्रेष्ठ कवि की प्रतिभा का प्रकाश काल और दिशा के आयामों को भेदकर जीवन में चेतना का रस प्रवाहित कर देता है। अँग्रेजी साहित्य में, रानी एलिज़ाबेथ का युग, ऐसी रचनाओं के लिए विख्यात है। वह युग देशभक्ति से ओतप्रोत था। एक इतिहास लेखक ने लिखा है कि उस समय 'Men lived intensely, thought intensely and wrote intensely.' शेक्सपियर और स्पेन्सर जैसे श्रेष्ठ कवि हुए और बेकन जैसे तार्किक विचारक। उस समय इंग्लैंड पर स्पेन का आक्रमण हुआ था और राष्ट्रीय संकट के बादल



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घिर आए थे। स्पेनिश आर्मेडा इंग्लैंड पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा था। समस्त अँग्रेज़ राष्ट्र देशप्रेम में मतवाला हो उठा था। स्वयं रानी एलिज़ाबेथ के भाषणों में पौरुष के स्वर गुँजने लगे थे। उस समय इंग्लैंड के साहित्यकार चुपचाप नहीं बैठे रहे। उद्बोधन की किरणें इटली से इंग्लैंड तक आईं। वहाँ के लेखकों ने देश को नए विचार दिए। मिल्टन की लेखनी को मानों क्राम्वेल की तलवार की धार मिल गई। फ्रांस की राज्य क्रांति के समय भी साहित्यकारों को नया बोध हुआ था। फ्रांस की राज्यक्रांति देखकर, अँग्रेज़ी कवि वर्डसवर्थ को ऐसा आभास हुआ कि नई मानवता जन्म ले रही है।

लेकिन इससे भी बढ़कर सुख की अनुभूति वर्डसवर्थ को इसलिए हुई होगी क्योंकि क्रांति के युग में वह भी एक तरुण कवि था। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में भी भारतीय कवियों की वाणी विद्रोही स्वरों में गूँजी थी। झाँसी वाली रानी की तलवार की धार शब्दों को मिल गई थी। हिंदुस्तान के आखिरी बादशाह बहादुरशाह बंदूक के साथ-साथ कलम चलाने में भी माहिर थे। **'जफर'** उपनाम से उन्होंने कविताएँ लिखीं और जनता को जागृत किया। मराठों के काल में पोवाड़ों (वीरगीतों) ने युद्ध की प्रेरणा दी। राष्ट्र पर जब-जब ऐसा संकट आता है, तब-तब वीररस की नदियाँ बहने लगती हैं और महाकाव्यों की रचना होती है। संसार के प्रायः सभी महाकाव्य इन्हीं परिस्थितियों में लिखे गए हैं। फिर चाहे वह होमर का **'इलियड'** या **'ओडेसी'** हो, अथवा वर्जिल का **'ईनेड'** वह **'महाभारत'** हो **'रामायण'** हो अथवा अँग्रेज़ों का **'ब्यूबुल्फ'**।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी, हमारे साहित्यकारों ने अपनी शक्ति भर जागृति फैलाने का महान कार्य किया। फलस्वरूप भारतीय साहित्य में श्रेष्ठ कृतियों का प्रणयन हुआ। बंकिमचन्द्र के **'आनन्दमठ'** और उनके **'वंदेमातरम्'** गीत ने भारतीय जनमन को आंदोलित कर दिया। रवीन्द्र के स्वरों ने मातृभूमि का यश दूर-दूर तक फैलाया। वैचारिक साहित्य के अध्येताओं ने भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के ग्रंथों द्वारा नई चेतना को जन्म दिया।

सच पूछा जाए तो, साहित्यकार देश की स्वतंत्रता व संस्कृति का सच्चा रक्षक है। देश की पुकार पर वह दौड़ता है और अपने शब्दों के माध्यम से लोगों में नई चेतना भरता है। साहित्य के बिना, किसी भी देश की सांस्कृतिक एवं बौद्धिक प्रगति हो पाना असंभव है। प्रत्येक आन्दोलन के लिए, प्रत्येक उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिए, उसकी वाणी एवं लेखनी की सहायता अनिवार्य है। भूदान आन्दोलन की सफलता के लिए भी आचार्य विनोबा भावे ने साहित्यकारों का आवाहन किया था कि वे भी वाक्‌दान करें। श्रेष्ठ साहित्यकारों को देवर्षि की पदवी उन्होंने दी थी। क्योंकि उनके शब्दों में से ही सत्य का साक्षात्कार होता है। साहित्यकार सत्य का अन्वेषक है, जो अपने शब्दों से समाज को नई राह दिखाता है। शांति के दिनों में, वह संसार के प्राणियों के हृदय जोड़ता है। वह संपूर्ण विश्व को माँ के समान ममता बाँटता है। हम ज्ञानेश्वर को मातृरूप मान कर उनकी पूजा करते हैं। संत साहित्य के संदर्भ में साहित्यकार का यही रूप स्वीकार करना पड़ता है। भारत की भावनात्मक तथा राष्ट्रीय एकता को कायम रखने के लिए न जाने कितनी बार साहित्यिकों को आवाज़ देनी पड़ती है। भावनात्मक एकता को बनाए रखने का एक मात्र माध्यम भावना ही है, और साहित्यकार ही इस माध्यम का उचित उपयोग कर सकता है। विश्व शांति स्थापित करने के लिए भी अनेक मंत्रों से लेखकों का आवाहन किया गया है।

आज भारतवर्ष पर एक भीषण संकट आ पड़ा है। हिमालय हमारे साहित्यकारों को पुकार रहा है। राष्ट्र की जनता की भावनाओं को मार्मिक ढंग से स्पर्श करते हुए, उन्हें अपनी लेखनी का विनियोग करना चाहिए। उनके शब्दों में साक्षात रणचंडी अवतरित हो, यही समय की माँग है। आज मातृरूप की अपेक्षा दुर्गा का रूप धारण करना चाहिए। चीनी आक्रमण ने मानो सोए हुए रुद्रावतार को जगाया है। वह रुद्रावतार शंखनाद करता हुआ प्रकट हो रहा है। साहित्यकार को चाहिए कि इस चीनी आक्रमण की चुनौती पूरी तरह स्वीकार करे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सुख की आसक्ति खूब बढ़ चली थी। इस अकर्मण्यता के लिए हमारे लेखक भी ज़िम्मेदार हैं, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। केवल ललित (सुन्दरम्) साहित्य का सृजन करने वाला ही साहित्यिक है और ललित रचनाएँ ही साहित्य हैं ऐसी रूढ़ परिभाषाओं के घेरे में वे घिर गए थे। किंतु यह एक भ्रामक धारणा है। मनोरंजन को ही



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्य मानकर लिखी गई रचनाओं में न तो विचार तत्त्व होता है और न कोई प्रेरणा। श्रेष्ठ विचार और उच्च प्रेरणाओं वाली रचनाएँ ही सच्चे अर्थों में साहित्य कहलाई जाने की अधिकारी हैं। फिर चाहे वे रचनाएँ ललित कोटि की हों अथवा प्रबंधात्मक। इस दृष्टि से टाल्सटाय का 'वार एंड पीस' उपन्यास, और कार्लाइल का 'फ्रेंच रिवोल्यूशन' ग्रंथ एक जैसा महत्त्व रखते हैं। गिबन के 'दि डिक्लाइन एंड फाल आफ रोमन एम्पायर' काल मार्क्स के 'दास केपिटल' आदि ग्रंथों ने दुनिया को महाकाव्यों सदृश प्रेरणा दी है। ललित साहित्य के नाम पर काफ़ी निस्तेज और कमज़ोर रचनाएँ लिखी गई हैं। साहित्य अकादमी और राज्य सरकारों की प्रेरणा से कतिपय श्रेष्ठ रचनाओं का निर्माण हो सका है, फिर भी, यह एक कटु सत्य है कि इस दिशा में, विचार प्रधान एवं उच्चकोटि का साहित्य सृजन हम नहीं कर सके।

जो साहित्य विचार और प्रेरणा से युक्त होता है, उसमें पौरुष बोलता है। ऐसा साहित्य किसी भी राष्ट्र को सदैव जाग्रत रखता है। सतत जागरूकता ही स्वतंत्रता की असली कीमत है ('इंटरनल विजिलेन्स इज़ दि प्राइस आफ लिबर्टी')। साहित्यकार को देश की स्वाधीनता का पहरेदार बनना चाहिए। दूरदर्शी रचनाकार आँखों में अंजन डालकर काल की गति को देखता है। वह भविष्य का लेखक होता है। इसीलिए उसे क्रांतिदर्शी कहा गया है। चीन का मुकाबला करने के लिए जिस तरह हमारे सैनिक खुली आँखों से मोर्चे पर डटे हैं, उसी तरह हमारे साहित्यकारों को भी आँखों में अंजन डालकर, देश के भविष्य को बचाना चाहिए और उसे प्रगति की ओर ले जाना चाहिए। जनता को यह अनुभूति करा देनी चाहिए कि चीन का यह आक्रमण कितना भयंकर है और उसका सामना करने के लिए लोगों को प्रेरित करना चाहिए। चीन के पास एक कुटिल विचार पद्धति है और उस विचार-पद्धति की सत्ता स्थापित करने के लिए उनके पास बंदूक भी है और लेखनी भी। यदि हमारे साहित्यकार इस वैचारिक संघर्ष में विजयी नहीं हुए तो राष्ट्र अँधेरे में भटक जाएगा। राष्ट्र को अँधेरे से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर तथा मरणोन्मुख दशा से नए जीवन की ओर लाने का प्रयास विचारवान लेखकों एवं श्रेष्ठ कवियों को करना चाहिए। साहित्यकार ज्ञान तीर्थ है। अपने समाज अथवा राष्ट्र को श्रेष्ठ विचारों के अभाव में, अंधेरे में पड़े रहने देना और दासता को निमंत्रित करना, एक ही बात हैं। इस दासता से बचने के लिए विचारकों और लेखकों को सच्चाई के मोर्चे पर आना ही पड़ेगा। अंधकार पर सदैव ही असुरों का साम्राज्य रहता है। **'सेन्ट पॉल'** के शब्दों में हम अपने साहित्यकारों से कह सकते हैं :

> "Put on the armour of God that ye may be able to stand against the wiles of the devil. For they wrestle not against flesh and blood, but against principalities, against powers, against the rules of darkness of this world."

चीन का साम्राज्यवाद एक भयानक आसुरी शक्ति है। उससे लड़ने के लिए हमें भी सशक्त और समर्थ विचार चाहिए। वैचारिक प्रेरणा और भावनात्मक स्फूर्ति जगाने वाला साहित्य आज की प्रमुख आवश्यकता है। तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी का कथन है कि कभी-कभी साहित्य का रूपांतर युद्ध साहित्य में हो जाता है। ऐसी स्थिति आने पर युद्ध साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा जाना चाहिए।

सच तो यह है कि चाहे शांति-काल हो, चाहे युद्ध-काल, विचार और प्रेरणा-युक्त साहित्य का सृजन सदैव होता रहना चाहिए। संस्कृति का विकास मूलतः वैचारिक प्रक्रिया से ही होता है। इस वैचारिक प्रक्रिया का प्रमुख माध्यम साहित्य है, और इस प्रक्रिया को सतत गतिशील रखना विचारकों और लेखकों का पुनीत कर्तव्य है। इसी प्रक्रिया से सांस्कृतिक एवं बौद्धिक जीवन का प्रबोधन और संशोधन होता रहता है। यह उद्‌बोधन भी सत्य के अन्वेषण की ही प्रक्रिया है। साहित्यकार मूलतः बुद्धिवादी और मानवतावादी होता है। इसीलिए वह राष्ट्र का उद्‌बोधनकर्ता भी होता है। वह 'हिरदय की आँख' से जीवन को देखता है। तभी तो उसका साहित्य प्रेरक बनता है। जब इस आंतरिक प्रेरणा में से नए विचार अभिव्यक्ति पाते हैं, तभी वे जनमानस को आन्दोलित करने में समर्थ होते हैं। ऐसा साहित्य ही वैचारिक क्रांति लाने में सफल होता है। आज भी हमें ऐसे उद्‌बोधन की आवश्यकता है। शायद यह आवश्यकता हर समय बनी रहती है। संभवतः इसी उद्देश्य से स्वर्गीय मानवेन्द्रनाथ राय ने **"भारतीय प्रबोधन संस्था"**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थापना की थी। वर्तमान परिस्थिति ने हमारे विचारकों और लेखकों पर यह गंभीर दायित्व डाला है कि वे प्रजातांत्रिक जीवन-मूल्यों के आधार पर वैचारिक क्रांति का नेतृत्व करें।

इस तरह की वैचारिक क्रांति एवं पुन-र्निर्माण की प्रक्रिया बुद्धिजीवी राष्ट्रों में सदैव होती रहती है। केवल रूढ़ि प्रधान और प्राचीन परंपरा में बँधे हुए राष्ट्र इस प्रक्रिया से वंचित रह जाते हैं। फिर भी, जब कोई गंभीर घटना घटित होती है, तब इसकी ज़रूरत महसूस होने लगती है। ऐसी गंभीर घटना न केवल हमारे परिवेश को दूर तक प्रभावित करती है, वरन् हमारे विचारों पर भी आघात करती है और फिर नए विचार-कण फूटने लगते हैं। आज हमारे देश में भी विचारकों का ऐसा आन्दोलन चल रहा है। उसमें से नया उद्बोधन प्रकट होना चाहिए। यह उद्-बोधन एक साहित्यकार ही दे सकता है, और तभी नए समाज-पुरुष का जन्म होगा।

जब समय के साथ कोई समाज अपने में परिवर्तन नहीं करता, तब ऐसी विचार क्रांति की जरूरत होती है। जब कभी किसी एक विचार-पद्धति पर लोगों की अंधी श्रद्धा बढ़ने लगती है या वह विचार-पद्धति ही हठवादी और अहंकारी हो जाती है अथवा उस विचार-पद्धति के नाम पर एकाध व्यक्ति या राष्ट्र दूसरों के नाम पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करता है, तब वैचारिक-उद्बोधन एक अनिवार्यता बन जाती है। नए विचारों के द्वारा विचारक और लेखक Doctrine of Action को जन्म देते हैं तथा शब्दों की प्रचंड शक्ति से जनता को आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देते हैं। कार्ल मार्क्स ने भी किसी युग में ज़ारशाही और फिर साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोह खड़ा किया था। लोगों को नए विचार देकर वैचारिक क्रांति उपस्थित की थी। जॉन स्टुअर्ट मिल, हर्बर्ट स्पेन्सर और डार्विन के दर्शन ने प्रतियोगिता प्रधान जीवन की आस्था को जन्म दिया था। मार्क्स ने उसका विरोध किया और शासनमुक्त साम्यवादी समाज रचना के लिए क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए। पूरे विश्व को बदलने की ताक़त उसके विचारों में थी। कम्युनिस्ट मेनीफ़ेस्टो में उसने स्वयं लिखा था :

"Philosophers have interpreted the world, our case is to change it."

ऐसी प्रचंड संकल्प शक्ति उसके पास थी। इस तरह दुनिया में साम्यवाद अवतरित हुआ। इसी साम्यवाद ने नाज़ीवाद और फासिज़्म के विरोध में मोर्चा खड़ा किया। लेकिन कालान्तर में साम्यवाद की गति-शीलता भी विकृत होने लगी। जिसका जन्म ही व्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए हुआ था, उसी ने आज सर्वशक्तिमान तानाशाही का निर्माण कर दिया। इस तानाशाही में बड़ी अंधेरगर्दी चल रही है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। भौतिक समृद्धि के पागलपन का परिणाम आध्यात्मिक दरिद्रता में हो रहा है। यह विचार पद्धति शक्ति के अहंकार में उन्मत्त हो उठी है। कम्युनिस्ट विचार पद्धति के अतिरिक्त दूसरी कोई पद्धति उपयुक्त नहीं, ऐसी दलीलें वे पेश करने लगे हैं और ऐसा भ्रम निर्माण करने में भी उन्हें कुशलता प्राप्त है। साधन-साध्य की अच्छाई या बुराई का विचार किए बिना ही, आज चीन ने साम्राज्यवादी-मुखौटा धारण कर लिया है। मध्ययुग में धार्मिक अंधश्रद्धा के कारण जैसा रक्तपात होता था ठीक वैसा ही आज कम्युनिज़्म के प्रति अंधमुक्ति के कारण हो रहा है। बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग का मानव, आचार-विचार की दृष्टि से आज भी तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की वृत्तियाँ धारण किए बैठा है। साम्यवादी विचार पद्धति अंधी और जड़ हो चुकी है। चीन तो यह समझ बैठा है कि इस विचार पद्धति के प्रचार-प्रसार के लिए युद्ध को छोड़कर दूसरा कोई विकल्प शेष नहीं बचा। युद्ध अवश्यंभावी है। ऐसी उसकी अटल धारणा बन गई है। चीन के हाथों में पड़कर साम्यवादी विचारधारा भी क्रूर और विकृत अंधी श्रद्धा में परिणित हो गई है। साम्यवाद के नाम पर माओत्से तुंग सर्वशक्तिमान तानाशाह बनने का स्वप्न देख रहे हैं। साम्यवाद का सामना करने के लिए विचार प्रवर्तकों को आगे आना ही चाहिए। इस अंधी और अहंकारी श्रद्धा से भीषण संघर्ष करने की आवश्यकता है। साहित्यकार अंधी श्रद्धा स्वीकार नहीं करता। वह एक स्वतंत्र विचारक है। किसी एक विचार पद्धति पर अंधी श्रद्धा रखकर वह जीवित नहीं रह सकता। उसकी श्रद्धा तो विचारकों की विविधता में ही रमती है। उसके लिए कोई विचार, परिस्थिति के संदर्भ में ही महत्त्वपूर्ण बनता है। उसकी यह आस्था जड़ विचारकों को काटकर, नई और तर्कशुद्ध श्रद्धा का निर्माण करती है। इसीलिए वह उद्बोधक कहा गया है। सामाजिक और वैचारिक उद्बोधन के द्वारा वह एक नई और मौलिक विचार पद्धति प्रस्तुत करता है। आज हमारे



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकारों के सामने यही समस्या है। इसी भूमिका पर संघर्ष करने की प्रतिज्ञा उन्हें करनी चाहिए। **नाट बाई ब्रेड अलोन, डॉ० जिवागो, ज़ोन आफ वायलेन्स** जैसी कृतियों के लेखकों ने कम्युनिज़म का यथार्थ रूप दुनिया को दिखा दिया है। वही कार्य हमारे लेखकों का भी है।

वस्तुतः साहित्यिक एक व्यक्तिवादी और बुद्धिजीवी प्राणी होता है। समूहवादी वह नहीं होता। एकांत क्षणों में वह चिंतन करता है। इसीलिए व्यक्ति स्वातंत्र्य अर्थात् विचारों की स्वतंत्रता उसके अस्तित्व की पहली शर्त है। अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए वह सतत जागरूक रहता है। स्वतंत्रता उसका सब से प्रिय शब्द है। स्वतंत्रता, साध्य भी है और साधन भी। विचार स्वातंत्र्य और सामाजिक न्याय के लिए वह दिन रात संघर्ष करता है। 'रात दिन हम युद्ध पर डटे हैं'—ऐसा कहने वाले संत कवि तुकाराम के अभंग भी सामाजिक समानता के लिए लड़ते रहे। तभी तो वे अजेय आत्मबल पा सके। औरंगज़ेब का नाश करने के लिए रामदास की वाणी सतत श्रम करती रही। उससे लोगों को प्रेरणा मिली। सच्चा साहित्यकार अन्याय सहन नहीं करता। वह सत्य का रक्षक होता है। उसके मन में मानवता के प्रति श्रद्धा की ज्योति जलती रहती है। इसी श्रद्धा से वह अपने राष्ट्र की उपासना करता है और उसके चरणों पर शब्द पुष्प अर्पण करता है। इसीलिए आज विचार प्रधान साहित्य तथा विचारों को प्रेरणा देने वाली रचनाओं की ज़रूरत है। साम्यवाद का यह संकट कितना भीषण है, इसकी पूरी-पूरी जानकारी लोगों को करा देनी चाहिए। साहित्यकार अच्छी तरह समझ लें कि विचार और प्रेरणा के बिना कुछ भी संभव नहीं होगा।

साथ ही साथ, प्रजातंत्र के मूल्यों का संस्कार भी होता रहना चाहिए। संस्कारित करने का यह दायित्व साहित्य ही ले सकता है। विचारकों के विचारों से ही नए समाज का निर्माण होता है। इसीलिए ये संस्कार आवश्यक हैं और मस्तिष्क का निर्माण करना तो साहित्य का स्वभाव धर्म है।

जनता में देश प्रेम जागृत करके, राष्ट्रीय जीवन के पुनर्जागरण का आवाहन साहित्यकारों को करना चाहिए। केवल देश प्रेम के बल पर ही इस संकट का सामना किया जा सकता है और उसी से भावनात्मक एकता स्थापित की जा सकती है। मेरे कहने का आशय ऐसा कदापि नहीं कि साहित्य को प्रचारात्मक होना चाहिए। विचार स्वातंत्र्य, जीवन की आस्था, सांस्कृतिक-परंपरा तथा राष्ट्र की सार्वभौमिकता को अक्षुण्ण रखने के लिए साहित्य के मोर्चे पर हमें चीन से लड़ना ही पड़ेगा। कविगण अपनी कविताओं से देश प्रेम की ज्वाला धधकावें। लेखकगण अपनी लेखनी से विचारों को खाद दें और उस पर अपनी अंतरात्मा का जल सिंचन करें। ग्रीक की पौराणिक गाथाओं में वर्णित पेगासस अश्व के समान जहाँ-जहाँ साहित्यकार को ठोकर लगे, वहाँ-वहाँ वैचारिक क्रांति के झरने फूट पड़ें। कथा लेखकों को अपनी कहानियों-उपन्यासों में, नाटकों-एकांकियों में, इस भीषण परिस्थिति का यथार्थ चित्रण और अविस्मरणीय पात्रों का निर्माण करना चाहिए। मगर ये पात्र केवल पात्र ही न रहें, बल्कि निश्चित विचार एवं स्वभाव वाले प्रतीक बन सकें। साहित्यकार एक नए संदर्भ में, दूसरा **'ओथेलो'** लिखने का संकल्प करें क्योंकि माओ के रूप में दूसरा **'इयागो'** आज उनके सामने खड़ा है।

एशिया की अशिक्षित जनता ही माओ का आहार है। अपनी विषैली औषधियों (विचारों की) को बाँटने के लिए वह अपने सहयोगियों को प्रेरित कर रहा है। इस व्यापक संदर्भ म चीनी आक्रमण एक ऐसा गंभीर उत्तरदायित्व है जिसे स्वयं इतिहास ने साहित्यकारों के कंधों पर रख दिया है, एक ऐसी पुकार है जो हिमालय की चोटियों से आ रही है।

**अनु० दिनकर सोनवलकर**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

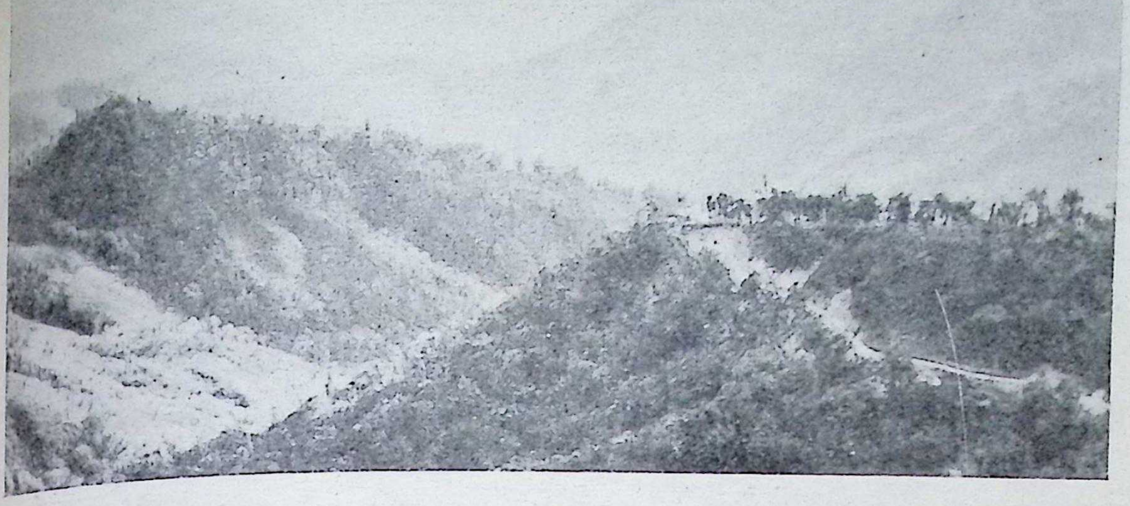

हिंदी

# कालिदास का हिमालय

## भगवतशरण उपाध्याय

हिमालय भारतीय संस्कृति का मूर्धन्य प्रतीक रहा है। वैसे तो समूचा भारतीय साहित्य उसके सानिध्य से समुन्नत हुआ है। संस्कृत के सारे काव्यों में उसकी प्रशस्ति उपलब्ध है, पर कालिदास को हिमालय विशेष प्रिय है और अपने काव्यों में वे बार-बार पर्वतराज की ओर आकृष्ट होते हैं। कुमारसंभव का समूचा काव्य-विन्यास उसी गिरिराज के शिखरों पर, उपत्यकाओं में, अंचल-प्रसार पर हुआ है; मेघदूत का उत्तर भाग कनखल की पर्वती ढलान से चढ़कर कैलाश और मानस तक जा पहुँचता है, जहाँ कवि की अलका के स्निग्ध-गंभीर पुष्करनाद से गूँजते, अपनी भित्ति-चित्रों की संपदा लिए प्रासाद खड़े हैं और जहाँ अलका की श्वेत सारी गंगा की धारा वन कटि भाग से छूट पड़ी है। रघुवंश के पहले, दूसरे और चौथे सर्गों की भावभूमि भी हिमालय की छाया में ही उठी है, अभिज्ञान-शाकुंतल के सातवें अंक और विक्रमोर्वशी के चौथे अंक की घटनाएँ उसी नगाधिराज की उच्चावच भूमि पर अनावृत होती हैं।

और वह नगाधिराज हिमालय, भारत का जागरूक प्रहरी, उसकी उत्तरी सीमा का निर्माणकर्ता, पूर्वसागर से पश्चिमसागर तक, पृथ्वी के मानदंड की भाँति उसे नापता चला गया है। पूर्वसागर निश्चय उत्तरी सीमा के पूर्वी भाग से पर्याप्त दक्षिण पड़ता है पर कवि की आदर्श राष्ट्रीय कल्पना में नेफा के पूर्वतम उत्तरी भाग से उतरती असम और बर्मा के बीच से होती अखंड शिलाओं की जो रेखा बंगाल की खाड़ी तक चली गई है वही, देश की पूर्वतम सीमा का निर्माण करती है, जैसे उसकी पश्चिमी सीमा का निर्माण वह हिन्दूकुश करता है, जिसका एक छोर पामीरों की ग्रंथि के पास कराकोरम की श्रृंखला, पूर्व में छूता अफ़गानिस्तान का शिरोभाग बनता अरब सागर तक चला गया है और जिसका पिछला उतार ईरान के पठार को छू लेता है।

हिमालय की इसी दीवार से निकल कर सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र की धाराएँ शतधार हो इस देश की उत्तरवर्ती भूमि को उर्वर करती थीं, आज भी उनकी अनेक धाराएँ देश की भूमि को बहुविध सींचती हैं।

पामीरों की वक्रकुंडली से निकल कर यह पर्वतमाला संसार के उच्चतम शिखरों का धवल मस्तक धारण किए प्रायः दो हज़ार मील दौड़ती चली गई हैं और तुषारावृत धवल प्रसार के कारण सहज ही अपना हिमाद्रि तथा हिमालय नाम सार्थक करती हैं। कवि ने उसके अनेक गगनचुंबी शिखरों का उल्लेख कैलाश, गौरीशिखर, गंधमादन, मंदर, मेरु और सुमेरु नामों से किया है। कैलाश क्रौंचरंध्र अथवा नीतिपास के पूरब, दार्चिन अथवा गंगोत्री से परे, मानसरोवर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कोई पच्चीस मील उत्तर शिव के "घनीभूत अट्टहास" सा खड़ा है, जिसके स्फटिक तुषार-दर्पण के सामने खड़ी हो देव ललनाएँ अपना काय-प्रसाधन करती हैं। कभी रावण ने अपनी भुजाओं का वल परखने के लिए कैलाश को झकझोर दिया था जिससे उसकी संधियाँ ढीली हो गई थीं, चूलें हिल गईं थीं और उस पर्वत के निवासी जीव पार्वती सहित सहसा संत्रस्त हो उठे थे। यही कैलाश "एकपिंगलगिरि" हैं, कुवेरशैल, जहाँ यक्षराज धनद कुवेर निवास कर अलका के प्रासादों को अपने संवंध से ऋद्ध करते हैं। वहीं हेमकूट के शिखर पर महर्षि मरीचि ने शकुंतला को शरण दी थी, जहाँ वर्णचित्रित मृत्तिकामयूर को परे फेंक भरत सिंहों के दाढ़ गिना करता था और पुरूरवा ने जहाँ दैत्य केशी के अंक से वारवनिता उर्वशी को झपट कर छीन लिया था। कभी तिब्वतियों का वह प्रसिद्ध "खंग-रिन-पोच" नाम का यह कैलाश हमारी उत्तरतम सीमा का संतरी था।

गंधमादन कैलाश के शिखर का ही एक भाग है, संभवत: उसका दक्षिणी भाग, जहाँ शिव का दांपत्य-विलास पलता है और जिसके वन-प्रांत में उर्वशी को खोकर पुरूरवा लतावितानों से, तरुपल्लवों से प्रिया की राह पूछता है, जहाँ मंदाकिनी के तीर सिकता के पर्वत फैले हैं, हंसों का धवल अंचल लहराता है, जाह्नवी पुलिन के चारु दर्शन होते हैं। गंधमादन पर्वत का मोह न केवल कविवर को है वल्कि समूची भारतीय पौराणिक कथाकारिता का वह ललितदर्शन है जिससे उसकी भौगोलिक सीमाएँ प्रवहमान वन जाती हैं, कैलाश से बदरीकाश्रम तक, गढ़वाल के उन पहाड़ों तक जहाँ से होकर अलकनंदा की पवित्र धारा दक्षिणवर्ती उतार पर वह जाती है।

पास ही मंदर है, वदरीकाश्रम के नरनारायण का मंदिर धारण करने वाला मंदराचल। महाभारत को उसे कैलाश और गंधमादन की ही दिशा में कैलाश के उत्तर रखना अभिप्रेत है। शिव का दांपत्य-विलास मेरु पर पलकर इसी मंदर की गुहाओं में कुछ काल खो जाता है, फिर कैलाश और गंधमादन की ओर उसका संक्रमण होता है।

मेरु (सुमेरु), जहाँ उमा का तप:पूत मुख विजित शंकर पहली बार अनवगुंठित करते हैं, कैलाशवर्ती ही है, उससे बहुत दूर नहीं, रुद्रहिमालय में ही अवस्थित, जहाँ से जाह्नवी अपना जीवन पाती है। मत्स्यपुराण ने राष्ट्रीय मोह से सुमेरु की सरहद वाँधी है—उत्तर में उत्तरकुरु, दक्षिण में भारतवर्ष, पश्चिम में केतुमाला, पूरव में फिर भारतवर्ष। सुमेरु चाहे जहाँ रहा हो पर उसका मोह भी भारतीयों से न छूटा और गढ़वाल का केदारनाथ आज भी परंपरया उसी नाम से मुखर है। सुमेरु स्वर्णमंडित है, विद्याधरों, किन्नरों, अश्वमुखों, किंपुरुषों का आवास, जिसका स्वर्ण चाहे लुट जाए पर जिसके प्रसार पर बालारुण और अस्तगामी सूर्य द्वारा प्रात:-सांध्य विखेरा सोना कौन हर सकता है?

कालिदास की भारती जिस लोकोत्तर भाव-गरिमा से हिमालय का उल्लेख करती है, वैसा उल्लेख किसी कवि ने किसी गिरि का नहीं किया। घनश्याम मेघ गिरिराज के कटिभाग को अपने श्यामल आवर्त से घेर लेते हैं। उनकी शीतल छाया में सिद्ध-वनिताएँ वात और वर्षा से डरी शिखर-शिखर जा धूप का सेवन करती हैं। हंसों की पातें नीचे के सूखे मैदानों से उड़कर गिरिमंडित गंगा की ओर उड़ आती हैं। जहाँ उस पवित्र धारा की नीहारिकाओं से वोझिल वायु यात्रियों का श्रम हरती है, किन्नरियों के गायन में कंपन भरता है, वनैले वाँसों के रंध्रों में प्रवेश कर उनमें वंशी का स्वर फूंकती है, भोज तरुओं से पतित पत्रों से मर्मर ध्वनि उत्पन्न करती है। नमेरु वृक्षों की घनी छाया में कस्तूरीमृग शिलाओं पर बैठ विश्राम करते हैं और शिलाएँ उनकी गंध से महमह हो उठती हैं। देवदारुओं के घने वन में उनकी शाखाएँ परस्पर जो रगड़ जाती हैं तो सहसा दावानल भड़क उठता है और तमपूरित रात्रि भासमान हो उठती है। हिमालय फिर भी दावानल के वैश्वानर से रात्रि को प्रकाशित होने की अपेक्षा नहीं करता, अनेक-अनेक औषधियाँ उसके वनप्रांतर में फैली हैं, जो दिवा का अवसान होते ही वल उठती हैं और रजनी विभावरी हो जाती है, तैलहीन दीप चहुँ ओर जैसे जल उठते हैं। उधर वह क्रौंचरंध्र है, कुमाऊँ का नीति-पास, तिब्वत जाने का द्वार, जो परशुराम की शक्ति की घोषणा आज भी अपने घाव द्वारा कर रहा है। कभी उस वीरकर्मा विप्र ने अपनी धनुर्विद्या की परीक्षा के लिए उधर तीर मारा था और क्रौंचरंध्र वन गया था। पहले उस राह हंस उड़े फिर भारतीय यात्री चले, जिधर कैलाश हाल के कटे हाथी दाँत की तरह खड़ा था। और



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी शंकर के श्वेतावास की छाया में मानस का वह पुनीत सर है जहाँ स्वर्णकमल खिलते हैं और जहाँ वर्षारंभ के लिए नीचे के गाँवों के सरों के हंस मृणाल का पाथेय ले उड़ पड़ते हैं। मानस के स्वर्णकमलों के प्रति, पीतारविंदों के प्रति, राजहंसों-राजहंसियों का आग्रह क्यों न हो। मैदानों में जब नदियाँ उमड़ पड़ती हैं, धरा पर छाया वर्षाजल जब उनके आहार को ढक लेता है तब मानसवर्ती शिलाएँ ही उनका आवास बनती हैं। मंदाकिनी के तीर विद्याधरों की बालाएँ स्वर्णसिकता से खेलती हैं और यक्षों की अलका के प्रासादों में जो रत्नदीप जलते हैं उनकी लौ कामातुर यक्षों की सताई यक्षिणियाँ लाजवश मुट्ठी भर-भर चूर्ण फेंक-फेंक कर भी नहीं बुझा पातीं। नगाधिराज हिमालय के प्रांतर पर डोलतीं चंवरी गायें अपने पुच्छ चवर झल गिरिराज के राजत्व का परिच्छेद पूर्ण करती हैं। गिरिराज की गुहाओं में मृगराज रमते हैं, और जब तब वनचर दंपत्ति। उनकी काम-केलि को ढकने के लिए झीने मेघ तिरस्करिणी बन गुहा के द्वार पर लटक जाते हैं।

हिमालय अनंत रत्न प्रसव करता है जिन्हें वहाँ के वनचर प्रायः खोजते फिरते हैं। जब सिंह गजों के गंडस्थल पंजों के प्रहार से बिदार गजमुक्ता झपट लेते हैं, कवि कहता है, तब गजमुक्ताओं को हेरते वनचर उनका सुराग सिंहों के पंजों की राह में छोड़ी रक्त छाप से पाते है। गजों के झुंड जब देवदारुओं को रगड़ कर तोड़ देते हैं तब वनांत तक उन तरुओं के क्षीर की तेज गंध फैल जाती है। जिन देवदारुओं को पार्वती अपना तनय मान अपने दूध से पालती हैं उन्हें क्रूर गज जब तोड़कर नष्ट कर देते हैं तब भला पार्वती के वाहन क्रूरतर सिंह उन्हें समुचित दंड क्यों न दें।

गौरीशिखर का पवित्र पर्वत नेपाल में है, गौरीशकर के नाम से विख्यात। अनेक लोगों ने इसे माउंट एवरेस्ट माना है जिस पर भारतीय शेरपा ने एक दिन भारत का झंडा गाड़ दिया था। एवरेस्ट चाहे गौरीशंकर न हो, पर निस्सन्देह गौरीशंकर आज हिमालय की जिस पर्वतमाला में है वह कभी भारतीयों का वंद्य था, वैसे वह आज भी उनका वंद्य है, यद्यपि जो एवरेस्ट की ही भाँति आज हमारी सीमा से हट गया है और जिसका प्रत्यक्षमात्र हम दूर दार्जलिंग से कर पाते हैं।

हिमालय की पर्वतमाला में अनेक प्रपात हैं जिनकी संख्या पावस में गणनातीत हो जाती है। इनमें से दो—गंगाप्रपात और महाकोशीप्रपात—का कालिदास ने उल्लेख किया है। वैसे तो इनका संबंध गंगा और महाकोशी नदियों से है पर वे वस्तुतः कहाँ थे यह निश्चित रूप से कह सकना आज कठिन है। गंगाप्रपात वशिष्ठाश्रम के पास ही कहीं होना चाहिए था, जहाँ कभी पुत्रव्रंताचारी राजा दिलीप गोचारण करते थे। वशिष्ठाश्रम हिमालय की उपत्यका में ही महाकवि ने स्पष्ट कहीं रखा है, जो वैसे रामायण की परंपरा से भिन्न है। महाकोशी नेपाल की सप्तकोशियों की सम्मिलित धारा है। उसी प्रपात के तीर शिव, हिमालय की कन्या पार्वती को शिव के लिए गिरिराज से, माँगने गए सप्तर्षियों के लौटने की प्रतीक्षा करते हैं।

हिमालय के गले हिम से ही निकल उत्तरी भारत की प्रधान नदियाँ नीचे के मैदानों में उतर आती हैं। पंजाब की पाँचों नदियों और सिंधु का निकास भी हिमालय से ही है। इनमें से कई को पाकिस्तान की धरती धारण करती हैं। गंगा का उद्गम गंगोत्री है। गोमुख द्वार से गिर समूचे मध्यदेश को उर्वर करती, ब्रह्मपुत्र को भेंटती, वह पतितपावनी गंगा सागर में लय हो जाती है। जाँह्नवी-भागीरथी की यह धारा, पौराणिक प्रसंगों की जननी, महान् सभ्यताओं का आदि कारण रही है। यमुना बन्दरपुच्छ के कलिंदगिरि से निकल कलिंदकन्या नाम सार्थक करती हुई, हिमालय का जल प्रयाग तक बहा ले जाती है और वहाँ, जैसा कवि ने कहा है श्वेतनील जलपट बुनने में सहायक होती है। नदियों का वह "सितासित" संगम देखते ही बनता है। उसी हिमवान से बहकर सरयू काली नदी का जल लिए अयोध्या को पुनीत करती गंगा से जा मिलती है। सरस्वती का उद्गम हिमालय के सिरमूर पहाड़ों में है, सिवालिक में जहाँ से आदि बद्री की राह उतर वह मरुभूमि में खो जाती है। ऋग्वेद का आदि मानव उसे पवित्रतम मान ज्ञान की धारा से अभिन्न कर देता है। फिर जब वह उसे नहीं भुला पाता तब प्रयाग की त्रिवेणी में उसे अन्त:सलिला कह संबोधित करता है। कुरुक्षेत्र के भारत युद्ध के समय बलराम युद्धविरत हो मितनयन सरस्वती के ही तीर जा बसे थे। गंगा की एक धारा मंदाकिनी भी थी, जिसे हिमालय के ऊँचे शिखरों से गिरने के कारण कवियों ने



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग-गंगा कहा है। हिमवर्ती प्रदेश में ही यह अलकनंदा से जा मिलती है और अलकनंदा अन्ततः गंगा से। उसी हिमालय के उत्तरवर्ती छोर में ब्रह्मपुत्र का उद्गम है जो तिब्बत के पहाड़ों से होता, नेफ़ा की राह अंपने ही नाम की घाटी में उतर आता है। उसी नदी के तीर भारत ने पहले पहल रेशम के कीड़े पाले थे, रेशम के पट बुने थे। उसकी धारा को लोहित प्रांत में प्राची आकाश में उठने वाली सूर्य की किरणें लाल कर दिया करती थीं और उसका "लोहितेय" (यह व्युत्पत्ति साधारण भिन्न है) सार्थक हो जाया करता था। और बालारुण की ज्योति का प्रथम दर्शन करने वाले प्रागज्योतिष के नागरिकों को अनेक बार भारतीय राजाओं ने दंडविधान से मंडित किया था। पर्वतराज के उत्तुंग हिमावृत शिखरों से निकल पहले जलधाराएँ शिलाओं पर पतली धार से गिरती हैं, टूटती चूर होती मैदानों में उतर आती हैं और वहाँ उनका सिंधुवत विस्तार हो जाता है।

पुराणों के अनुसार इसी हिमालय में, इसके मध्यभाग में अवस्थित, वह अनवतप्त सरोवर है जहाँ से चार प्रधान नदियों का निकास होता है। सीता अथवा यारकंद की धारा पामीरों को बेध उत्तर बह जाती है, वक्षुनद (आमू दरिया) पश्चिम, सिंधु दक्षिण और गंगा पूरब की ओर। वक्षु की घाटी हिमालय से मिले पामीरों के ही पश्चिमोत्तरी उतार पर है जहाँ अनेक सभ्यताएँ फली फूलीं और जिसके फरगना-बदख्शां के गीत फिरदौसी ने "शाहनामा" में गाए। वक्षु के तीर की क्यारियों में केसर फूलती है, और एक बार वहाँ के हूणों ने—कालिदास भी कालविरुद्ध दोष से मुक्त नहीं—भारत की ओर निगाह फेरी तब रघु कोजक अमरान पहाड़ों को बगली दे, वक्षु की उस घाटी में उतर गए थे और अपने रिसाले के घोड़ों को उन्हीं कीमती क्यारियों में विश्राम दिया था, जहाँ केसर घोड़ों की सटों में लिपट उन्हें लाल कर देंती थी। युगों बाद जब "चन्द्र" ने पंजाब के सातों—तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्ध्योर्जिता वाल्हिका :—नदी को पार कर बलख के निवासियों (वाहिलकों) को जीता था तब उस घाटी की याद वह न भुला सका था और उसने मेहरौली (पृथ्वीराज की दिल्ली) के पास अपना लौह-स्तंभ खड़ा कर अपनी इस विजय की प्रशस्ति खुदवा दी थी। भारत की सीमा तब ईरान से टकराती थी और रघु जब दाख से ढकी ईरानी भूमि (द्राक्षावलयभूमिषु), बोलन का दर्रा लाँघ, गिरिश्क जा पहुँचे तब ईरानी अश्वारोहियों ने दाँतों में तृण दाब मस्तक से पहाड़ी उतार उनकी अभ्यर्थना की थी।

कालिदास का भारत की प्राकृतिक सीमा प्रस्तुत करने का प्रयास कभी इतिहास संमत भी था, कालिदास का अपना नहीं। तोलेमी ने सिंधु के पश्चिम के प्रदेशों—बलूचिस्तान और अफ़गानिस्तान दोनों-को भारतीय सीमा के भीतर गिना था। इधर के सारे प्रदेशनाम मूल संस्कृत में हैं और वह समूची भूमि इस्लाम की विजय तक भारतीय राजाओं द्वारा शासित होती थी। यदि तोलेमी द्वारा निर्धारित भारत की पश्चिमी सीमा हम स्पष्ट करना चाहें तो हमें सिंधु के मुहाने से बलख तक एक रेखा खींचनी होगी जिसके भीतर न केवल कंदहार, ग़ज़नी और काबुल पड़ेंगे बल्कि उनसे भी पश्चिम के प्रदेश, जिससे प्रायः समूचा हिंदुकुश उस रेखा के भीतर आ जाएगा। यदि तोलेमी हिंदुकुश और आमू दरिया के उद्गम को भारत की उत्तरी और पश्चिमोत्तरी सीमा मानता है तो शुद्ध राष्ट्रवादी कालिदास उन्हें अपनी सीमा के भीतर क्यों न मानें? हिमालयवर्ती इस भारत भूमि की तब की परवर्ती सीमा यही आमू दरिया था जिसके अर्धचंद्राकार मोड़ के पूरब कश्मीर की सीमा पर कराकोरम के उत्तर की दिशा में वखां है. और उसी से लगी पामीरों के चरण में लोटी घाटी है जिसके एक ओर सिंधु की उपरली धारा है दूसरी ओर आमू और यारकंद का उद्गम स्रोत। इसी घाटी की राह एक ओर तिब्बत, दूसरी ओर तुर्किस्तान जाती थी। बल्ख से बक्शाब के संगम तक खुत्तल की राह होकर जाते थे और यदि कालिदास के मन में उधर की किसी राह की संज्ञा थी तो निश्चय रघु ने वही राह ली होगी जो सिकन्दर ने बल्ख तक ली थी और फिर उत्तरपूर्व घूम कर बदख्शा और वंखा की राह कम्बोज की सीमा पर वे जा पहुँचे होंगे।

आगे का देश निस्संदेह तब के भारत का न था और रघु दूसरी ओर से लौटने के लिए फिर हिमालय पर चढ़े। राह में कश्मीर और वाहिलकों के बीच पर कुछ पूर्वायत, कम्बोज थे जिन्हें सर करना जरूरी था और कम्बोज चीन की सीमा तक फैले थे, हिमालय के परे। कल्हण ने "राजतरंगिणी" में कम्बोजों को कश्मीर के उत्तर में रखा है जिन्हें मुक्तापीड़ ललितादित्य न दरदों के साथ अपने प्रताप से झुलस दिया था। रघु पामीरों की ओर से जब यारकंद



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की घाटी से होकर कम्बोजों के बीच से निकले तब कराकोरम की शृंखला सामने थी। उसी का दर्रा लाँघ वे गंगा की उपरली धारा की ओर निकल गए, बाईं ओर, संभवतः लद्दाख के सिरे-सिरे दर्रों के बीच होकर। कुछ अजब नहीं, जैसा कालिदास के संकेत से प्रायः स्पष्ट है जो रघु संभवतः और पूरब से चले, समूचे लद्दाख को अपनी सीमा में लेते। और यदि उनका गंगा के कणों से बोझिल शीतल वायु से अभितृप्त होना सही हो तो इस अनुमान में तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि उनकी राह हिमालय और लद्दाख के बीच होती, बद्रीनाथ गंगोत्री को लाँघती, गंगा और यमुना के बीच पहुँची होगी, जो कैलाश के निकटवर्ती उल्लेख से स्पष्ट भी हो जाता है। यदि कम्बोज देश बदख्शा का एक भाग और यारकन्द घाटी से लगी ग़लचा भूमि रहा हो तो तब की भारत की सीमा के भीतर उसका होना सहज जान पड़ता है। देश अखरोटों से भरा था जिनके तनों से रघु के हाथी बाँधे गए थे और उन अच्छे घोड़ों की जाति आज भी वहाँ की विशेषता है जो अगणित संख्या में रघु को भेंट किए गए थे। कम्बोजों द्वारा रघु को प्रदत्त रत्न का उल्लेख गलचाभाषी शहर मुंज़ान की गोमेद की खानों से सार्थक हो जाता है। इसी गलचाभाषी प्रदेश में कश्मीर के उत्तर और उत्तरपूर्व कम्बोजों का निवास था, लद्दाख से लगा, कुछ और उत्तरायत, जो आज चीन में है। इन्हीं भारतीय कम्बोजों ने कभी कम्बज अथवा कम्बोदिया में, भारत-बर्मा के दक्षिणी-पूर्वी दिशा में अपना सांस्कृतिक उपनिवेश खड़ा कर उसे अपना नाम दिया था।

हिमालय की पर्वतमाला में ही रघु ब्रह्मपुत्र घाटी की ओर बढ़ते चले गए थे, किरातों, उत्सव संकेतों, किन्नरों की दिशा में। आरम्भ में किरात पड़ते थे मर-युल (जिसे तिब्बती मध्यकाल में मर-पुल अर्थात् "मक्खन का देश' कहते थे, वही आज लद्दाख कहलाता है) या मुर-युल में। कालिदास के किरात निश्चय लद्दाख, जंस्कर और रुप्श के तिब्बती थे, यद्यपि कुछ अजब नहीं जो जातिवादी किरात संज्ञा से तात्पर्य दूर तक फैली उन तिब्बती जातियों से भी रहा हो जो कराकोरम और गंगा से पूरब कैलाश और मानसरोवर के निकटवर्ती प्रदेश में रहते रहे हों। भोट और किरात नाम प्रायः समानार्थक रूप से पहले प्रयुक्त होते रहे हैं। भूटान का भारतीय सीमा के अन्तर्गत होना इस प्रकार प्राचीन परंपरा की भावभूमि पर खड़ा है। ग्रीक माँझी द्वारा पहली सदी ईसवी में लिखा 'पेरिटलस' किरातों को गंगा के निकास के पश्चिम और तेलेमी उन्हें टिपरा के निकट रखता है। पर प्रायः भारतीय साहित्य में उत्तरवर्ती किरात हिमालय की समूची शृंखला में, विशेषकर ब्रह्मपुत्र की घाटी में, बसे बताए गए हैं। कालिदास के रघु का संपर्क उनकी पश्चिमी जातियों से संभवतः लद्दाख के आसपास ही हुआ था।

किन्नर किरातों से भिन्न थे और उनका उल्लेख अक्सर मानवेतर यक्षों-गंधर्वों के साथ हुआ है। संभवतः वे कैलाश और मानस के पश्चिम में ही बसे थे। सतलज की घाटी में जहाँ चन्द्रभागा की धारा निकट आ जाती है वहीं कहीं आधुनिक कनौर के पास किन्नरों का निवास था। उत्सव संकेतों के प्रति कवि का संकेत सांस्कृतिक है। इस संज्ञा से उन जातियों का तात्पर्य है जो सगोत्र संबंध करती थीं, जिनमें वैवाहिक बंधन शिथिल थे, जिनमें उत्सव अर्थात् प्रणय का आधिपत्य था और जो संकेत द्वारा अपने प्रियों को बुला लेते थे अथवा स्वयं प्रेमातिरेक में बुलाए जा सकते थे। कन्नौर का प्रदेश आज भी इस प्रक्रिया से सहज संमत है।

पूर्व में कामरूपों का निवास था, आसाम की धरा पर, बर्मा तक, लौहित्य जिसे अपने रस से सींचता था प्रागज्योतिष, गौहाटी, उनकी राजधानी थी।

हिमालय, प्रकृति का अभिराम आवास, देवताओं की पुनीत भूमि, हिंदूकुश की पश्चिमवर्ती शृंखला से जुड़ा, पामीरों की उन्नत भूमि पर मस्तक धरे, कम्बोज-लद्दाख को अपने अन्तर में लपेटे, कैलाशवर्ती भूमि से नफ़ा के समूचे उत्तमांक का परिकर बाँधे, बर्मा तक चला गया है। हमारे ऋषियों के ज्ञान का विकासक, नदियों के उपरले स्रोतों का संचारक हिमालय! क्या हम उस पर पदाघात सह सकेंगे?



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी

# चीन में साहित्य पर नियंत्रण

प्रभाकर माचवे

"चीनी साहित्य" के गए चार अंकों में सीमा-युद्ध, भारत-आक्रमण का एक अक्षर से उल्लेख नहीं है। इस लक्ष्य से वहाँ के साहित्यिक अनभिज्ञ हैं, मौन हैं या मुँह-वंद हैं।

1963 के "चीनी साहित्य" के प्रथम अंक में माओ-त्से-तुंग की छह कविताएँ छपी हैं। 1929 से 1931 के बीच घोड़े पर चढ़ कर फ़ौजी अभियान में गुनगुनाई हुई इस कवि-तानाशाह की पंक्तियाँ हैं, जो संपादकों ने खोज निकाली हैं। उनमें ये 'दिव्य' (?) पंक्तियाँ हैं :

1--तेजी से तूफान टूटता है
युद्ध के स्वामी फिर लड़ रहे हैं
लोगों में यातना और क्रोध बरसाते हुए--

2--सारी दुनिया सफ़ेद है,
हम बर्फ़ में बढ़ते जा रहे हैं, कूच कर रहे हैं
इस मजबूत दर्रे में से बढ़ते हुए लाल झंडे को हवा फरफराती है
किधर चला है यह दस्ता ?
शक्तिशाली सेना, किसानों-कामगारों की, चीओन पर जा रही है।

3--जून में हमारी स्वर्गिक सेनाएँ सड़ते हुए पाप से जंग शुरू करेंगी,
हमारी सेना का दस-मील का घेरा कुन और पॅग को पकड़ लेगा।
दस लाख कामगार और किसान शब्द सजा अपना लोहा दिखाएँगे,
उन्होंने किउनत्सी को पाट दिया, अब हुन्नान और हूपेह को पीस देंगे।
अन्तर्राष्ट्रीय गीत गा रहा है--यह वीरों का गान है--



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**4—हमारी फौजों ने चांग हुई-त्सान (सेनापति) को पकड़ लिया**
**दो लाख की ताकत में वे कियान्‌सी लौटे**
**आधा क्षितिज तरंगायित धुएँ से ढँप गया;**
**कामगार-मज़दूर करोड़ों की संख्या में एक आदमी से लड़ने उठे हैं**
**और पू चाऊ की पहाड़ियों के पगतल पर लाल झंडों का हजूम है!**

'**पू चाउ**' पर कवि-तानाशाह माओ ने एक टिप्पणी 1963 में दी है, जो बहुत मनोरंजक है। "हुई हानत्‌जू की पुस्तक में, 'ज्योतिष के बारे में' अध्याय में यह कथा है कि जब कुंगकुंक ने पुराने चुआन शू पर विजय के लिए युद्ध किया, तो क्रोध में उसने पू चाऊ पर्वत को पैरों तले रौंद डाला, स्वर्ग के स्तम्भ तोड़े और धरती के रस्से तोड़ दिए। आकाश तो उत्तर-पूर्व की ओर चला गया, सूर्य चन्द्र-सितारे सब अपना स्थान बदल चुके, और पृथ्वी में दक्षिण-पश्चिम की ओर दरार पड़ गई। सारा धूल और पानी वहाँ जमा हो गया।" माओ-त्से-तुंग फरमाते हैं कि इस कहानी के कई रूप हैं। पर उन्हें 'हुआई नान्‌-त्सू' का कथा-रूप पसन्द है। माओ के अनुसार कुंगकुंक मरा नहीं, वह फातेह बना, विजयी हुआ।

मार्क्सवादी-वैज्ञानिक माओ का यह अंधविश्वास सन्‌ 1963 में छपा है। हमें इसमें कोई आश्चर्य नहीं लगता। राजनीति के नेता के नाते जिस अंध सैनिक-तानाशाही को वे जीवन में प्रत्यक्ष करते हैं, उसी का समर्थन कवि माओ कर रहा है।

सैनिकशाही का साहित्य पर नियंत्रण चीन में कम्यूनिस्ट राज्य काल के बाद की एक बड़ी घटना है। चीनी लेखकों और कला-श्रमिकों (आर्ट वर्कर्स) की तीसरी 'कांग्रेस' का एक चित्र छपा मिलता है। उसमें ये लेखक-प्रतिनिधि स्कूली बच्चों की तरह खड़े ताली पीट रहे हैं। उस चित्र के नीचे जो अँग्रेजी में लिखा है, वह यों हैं:

> "चीन का साहित्य और कला चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी और बहु-जातीय चीनी जनता के महान नेता अध्यक्ष माओ-से-तुंग के सीधे नेतृत्व और अथक संरक्षण में विकसित और परिपक्व हुई है। इस 'कांग्रेस' के उद्‌घाटन के समय पार्टी और सरकार के सभी प्रमुख नेताओं ने भाग लिया: ल्यू शाओ-ची, चाऊ-एन-लाई, चू-तेह सब मौजूद थे।"

इसी संमेलन में माओ-तुन ने वह प्रसिद्ध भाषण दिया, जिसका शीर्षक था 'समाजवादी युग की अग्रगामी छलांग का वर्णन करो! साहित्य में उसे ही प्रतिबिंबित करो!" इस भाषण में जिन-जिन देशों में समाजवाद-साम्यवाद नहीं है उन्हें पूँजीवादी क़रार दिया गया और उनके ख़िलाफ़, वहाँ के नेता और साहित्य के खिलाफ़, खासा ज़हर उगला गया है।

चीन जैसे समाजवादी-साम्यवादी देशों में लेखक स्वतंत्र नहीं है। उसकी कोई हस्ती नहीं, अपनी राय नहीं। वह तो एक विराट मशीन का पुर्ज़ा मात्र है। उसकी हर रचना पर शासन-यंत्र की नज़र रहती है। यह देख लिया जाता है कि लेखक या कलाकार शासन-यंत्र में कहाँ तक उपयोगी है। उसी हिसाब से उसे मान-सम्मान या अनादर मिलता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होपेई प्रांत का एक लोकगीत इस प्रकार से छपा है "चीनी साहित्य" (दिसम्बर, 1960) में —

चेअरमैन माओ सारे देश में घूमता है
पर्वत खुश हैं और नदियाँ भी,
ओमेई पर्वत अपने हाथ उठाकर अपने रत्नों के कोश उपहार में देता है।
पीली नदी पूँछ डुलाती और गाती है।
चेअरमैन माओ सारे देश में घूमता है
कामगार खुश हैं और किसान भी;
अनाज और कपास के पर्वत आकाश तक ऊँचे उठते हैं
पिघला हुआ लोहा और इस्पात नदियों की तरह बहता है।

'येन्नान की तेल की खानों के गीत' नामक लिची की पुस्तक से कुछ कविताओं के अनुवाद यों है। इन्हें नए चीन के लोग चाहे कविता कहें हम तो कह नहीं सकते :

1—सड़क-सुरक्षा के मज़दूर कामगार

जब तुम तीन शासन से पीकिंग जाते हो
या उरुपची में, रिश्तेदारों के पास जाते हो, तब कहो,
तब तुम कान्सू-चिंघाई सड़क लो
सारी सतह आईने की तरह साफ़ है सारे रास्ते भर।
जब तुम्हारी गाड़ी गोबी रेगिस्तान से सरपट भागे
जो मुस्कराते चेहरे मिलें उन्हें याद करो;
वे सड़क सुरक्षा के कामगार थे जिस गाड़ी में तुम बैठते हो
वह ऐसे रास्ते पर जा रही है जो उनके पसीने से बनाई है।

2—लाल निशान

यह सब रंगीन उत्सव-ध्वज है
इस वीरान में जहाँ आनंद का संगीत अभी नहीं आया
किसने यह लाल झंडा इस शिखर पर फहराया
जहाँ पर साहसी पक्षी भी नहीं पहुँच पाते हैं ?
इस लाल झंडे को अपनी गहरी कृतज्ञता दो
उसने तुम्हें तुम्हारा कोष प्राप्त करा दिया।





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3—क्रांति के शहीदों के नाम

उन्हें पार्टी के सामने कोई लाज नहीं लगी
पार्टी ने उन्हें शिक्षित किया
उन्होंने वह सब किया जो सिपाही करते हैं
वे बड़े ही महान पुरुष थे।
हर रात के अँधेरे से भरे गाँव में
वे ऊष्ण सूर्य, माओ त्से-तुंग को लाए
फिर उन्होंने मारा, जख्म पर पट्टियाँ बाँधने को नहीं रुके,
उन्होंने त्साईदाम के चोरों को मारा
हम अभी भी आनन्द मनाते हैं, जब वे घुटने-घुटने
जून के बर्फ़ में पीछा करते थे
हम पेट भर खा रहे हैं, जब से
ठंडा खाना चबा रहे थे ।

ऐसे देश में साहित्य की सब विधाओं पर राजनैतिक पक्ष की राजनीति का गहरा असर होता है। जीवनी लेखन भी भटैती या व्यक्ति-पूजा से अधिक नहीं होता। छन-छाङ्-फङ् की माओ-त्से-तुंग की जीवनी, 'लम्बे अभियान में अध्यक्ष माओ के साथ' छपी है—उसका यह अंश देखिए—(पृ० 111 और 112)

"मुझे याद है, 17 मई, 1946 को, शानतुङ रवाना होने से पहले मैं अध्यक्ष से विदाई लेने गया था। उस दिन उन्होंने मुझसे बहुत-सी बातें की थीं।

"तो तुम शानतुङ जा रहे हो ?" अध्यक्ष ने बातचीत शुरू की "वह एक बहुत अच्छी जगह है। वहाँ हमारा क्रांतिकारी अड्डा बहुत बड़ा है। हमने हाल ही में बहुत-सी काउंटियों को मुक्त किया है, इसलिए वहाँ तरह-तरह के कामों के लिए कार्यकर्ताओं की जरूरत है। जब तुम वहाँ जाना, तो वहाँ के मुक़ामी जिम्मेदार नेताओं की ज़रूर इज्जत करना और उस संगठन के नेताओं का भी सम्मान करना जिसमें तुम्हारा तबादला किया गया है। तुम अपने स्थानीय क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के साथ एकता कायम करना और उनके साथ अच्छी तरह सहयोग करना।"

उनकी राय ध्यान से सुनने के पश्चात् मैंने अपनी नोटबुक निकाली और उनसे कुछ शब्द लिखने के लिए कहा। उन्होंने लिख दिए और मुझे अपनी एक फोटो भी दे दी, जिस पर उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए। मैंने इन चीज़ों को तभी से एक बहुमूल्य निधि समझ कर रखा है।

मुझे वे दिन भी याद है जब मैंने अध्यक्ष के साथ काम करना शुरू किया था—पहले अर्दली की हैसियत से, फिर अंगरक्षक की हैसियत से—और मैं कैसे उनके साथ लंबे अभियान से गुजरा था। उस समय मैं सोलह वर्ष का था। वास्तव में, बजाय इसके कि मैं अध्यक्ष की देखभाल करता, अध्यक्ष मेरी देखभाल करते थे। वे मुझे क्रांति के कारण समझाते थे, पढ़ना-लिखना सिखाते थे और जब कभी भी मैं अपने घरवालों को याद करता था तो मेरे लिए घर पत्र भी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिख देते थे। मूसलाधार वर्षा में रात के समय अभियान के दौरान, वे खुद ही लालटेन ले चलते थे और उससे मुझे रास्ता दिखाते थे ताकि मैं गिर न जाऊँ। एक अविस्मरणीय घटना तब की है जब ल्यूफान पर्वत पार करते समय, मैं कई दिनों तक मलेरिया से ग्रस्त रहा। उस समय मैं बहुत कमजोर हो गया था। पर्वत की चोटी पर पहुँचने से पहले ही, मेरा सारा शरीर काँपने लगा और मैं बेहोश हो गया। अध्यक्ष ने अपना फटा-पुराना लबादा उतार कर मुझे पहना दिया और वे स्वयं पतले कपड़े पहने हुए सर्द हवा में खड़े रहे।

मेरे जीवन से अधिक मेरी राजनैतिक शिक्षा उनके लिए चिंता का विषय बनी हुई थी। फरवरी, 1936 में, जब मैं उन्हें छोड़ कर लाल सेना अकादमी में जा रहा था, तब उन्होंने गंभीरता के साथ मुझे से कहा था: "पढ़ना बहुत अच्छी बात है, इसलिए नहीं कि तुम कोई अफ़सर बनना चाहते हो, बल्कि इसलिए कि तुम जनता के लिए और भी अधिक काम कर सकते हो।"

ऐसे देश के साथ हमारा पाला पड़ा है। लम्बी दुश्मनी की यह शुरूआत है। भारत के लेखक और कलाकार धोखे में न रहें। उनके प्रचार-तंत्र की उँगलियाँ बहुत दूर तक पहुँच चुकी है----चीनी अजगर के नाखून हमारे गोश्त में गड़े हैं। ऐसे समय भारतीय लेखक का क्या कर्तव्य होना चाहिए, यह बताने की जरूरत नहीं है।

चीनी भाषा अब अबूझ नहीं रही। उसके इरादे साफ़ हैं। हमारी भाषा अब लड़खड़ाती हुई, लचर और लुंज-मुंज नहीं होनी चाहिए। इस भरोसे पर भी रहने से काम नहीं चलेगा कि साम्यवादी दुनिया में जहाँ 'खग जाने खग ही की भाषा' थी, आपस में कोई बड़ा मतभेद पैदा हो गया है और गृह-युद्ध हो जाएगा। अब ऐसी भाषा की आवश्यकता है जो हमारे साहित्य और साहित्यकारों को उद्बुद्ध करे, जगाए, और सिद्ध करे कि साहित्य सैनिकशाहियों में नहीं पनपा करता। वहाँ जोश मरहम हो जाता है और **'चने जोर गरम'** गाने लगता है।

लेखक का तलवार और बंदूक से यही रिश्ता है कि दोनों का कोई रिश्ता नहीं हो सकता। लेखनी विश्वशांति के लिए है; सेनाएँ अणुबम की ओर जा रही है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर उन्हें यह बताने वाले लेखक ग्रौर मनीषी विद्यमान थे कि उनकी शांति नष्ट कर दी गई है, कि उनकी रेखताएँ मान्यता में हैं। 'विद्यापति की पदावली' या चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' में देशभक्ति के इस स्वर का प्रमाण मिलता है। शंकरदेव जैसे वैष्णव संत कवि भी ग्रपनी भारतीयता के प्रति निरन्तर जागरूक रहे थे :

धन्य है कलिकाल यह,
ग्रौर धन्य मानव-देह—
धन्य, निश्चित धन्य,
भारतभूमि जिसका गेह ।

देश के प्रति स्नेह ग्रौर उसके लिए त्याग की तत्परता देशभक्ति है। ग्रौर एक ऐसा समय भी ग्राया जब हिंदू ग्रौर मुसलमान दोनों उस स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए कंधे से कंधा भिड़ा कर लड़े जिसका वे साथ-साथ उपभोग करते रहे थे। वास्तव में देशभक्ति वर्ग, जाति ग्रौर धर्म की सीमाग्रों का ग्रतिक्रमण कर विभिन्न तत्वों को एक साँचे में ढाल देनेवाली ग्रद्भुत शक्ति है। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में ग्रसम पर ग्राक्रमण करने वाला मुग़ल सेनापति राजा रामसिंह यह देखकर ग्राश्चर्य-चकित रह गया था कि मुसलमान भी उसके विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं।

ग्रसमिया बुरंजियों में जो इतिवृत्त उपलब्ध होते हैं उनमें ग्रसम के विरुद्ध मुग़लों की नियत के विस्तृत विवरण मिलते हैं। ग्रौर उनमें देशभक्ति के सुरों की विभिन्न ग्रवसरों पर विभिन्न रूपों में व्याख्या मिल जाती है। शक्तिशाली पठान ग्रौर मुग़ल पड़ौसियों के विरुद्ध इस भूमि को सन्नद्ध रहना पड़ता था। ग्रसम यह ग्रनुभव कर चुका था कि स्वतंत्रता का मूल्य है चिरन्तन जागरूकता। यह स्थिति कभी-कभी सरकार को हर ऐसी वस्तु के प्रति सन्देहशील बना देती थी जिसमें विदेशीपन की गंध हो। एक बार एक पड़ौसी राज्य ने कुछ वस्त्र उपहार-स्वरूप भेजे। उसके विषय में सभा में मन्तव्य प्रकट किया गया, वह इस प्रकार था : "भले ही विदेशी वस्तुएँ श्रेष्ठतर हों, राजा को उन्हें धारण नहीं करना चाहिए।" राज्य में जो कुछ सर्वोत्तम था, राजा से उसके प्रतिनिद्धान की ग्रपेक्षा की जाती थी ग्रौर दूसरी ग्रोर स्थानीय वेषभूषा एक प्रतीक थी—स्थानीयता तथा राष्ट्रीयता के प्रति प्रेम की प्रतीक। मानव-ग्रादर्श प्रतीकों का ग्रवलम्ब ग्रहण कर जीते ग्रौर फलते-फूलते हैं। इस देशभक्ति-पूर्ण मनोदृष्टि ने शासक को यह सिखाया कि वह स्थानीय लोगों के एक वर्ग-विशेष को, तथाकथित जनजातियों को इस भूमि के मूल निवासी समझे ग्रौर उनके साथ उदारता तथा सहृदयता-पूर्वक व्यवहार करे। एक बार राजा ने एक पराजित जनजाति को इन प्रेरणापूर्ण शब्दों में शांति का सन्देश दिया था : "हम मिट्टी की प्राचीरें बना दें तो वे ढह जाएँगी, लकड़ी की प्राचीरें बना दें तो वे गल जाएँगी, मैंने तुम्हारे लिए ग्रपने वचन की प्राचीरें बनाई हैं जो सदा बनी रहेंगी।" इसी मनोदृष्टि का परिणाम था कि संकटकाल में स्थानीय सरदार केन्द्रीय शासन के चारों ग्रोर इकट्ठे हो जाते थे ग्रौर जब देश पर ग्राक्रमण होता था तो सम्मिलित मोर्चा लेते थे।

ग्रसमी लेखकों ने प्राय: 'बुरंजियों' के इस स्रोत से प्रेरणाप्रद उपाख्यान ग्रहण कर उन्हें साहित्य के रूप में वाणी दी है। वास्तव में ये बुरंजियाँ स्वयं ही साहित्य हैं जिनमें प्रसादपूर्ण ग्रौर प्राय: ग्रोजस्विनी गद्य-शैली में घटनाग्रों का वर्णन है, विभूतियों के संवेदनापूर्ण ग्रौर वस्तुपरक निरूपण हैं।

ग्राइए, देखें संकट की उस घड़ी के विषय में ये 'बुरंजियाँ' क्या कहती हैं जब बादशाह ग्रौरंगज़ेब ने ग्रपने फैलते-बढ़ते हुए साम्राज्य की भूख मिटाने के लिए ग्रसम को निगल जाने की भरसक चेष्टा की थी।

जब राजा रामसिंह विशाल वाहिनी से सज्जित होकर ग्रसम के राजा को, मुग़ल सम्राट् को दिया गया वचन भंग करने के ग्रपराध का दंड देने के लिए ग्रसम में प्रविष्ट हुग्रा ग्रौर प्राय: गौहाटी तक पहुँच गया तब ग्रसमी सेनापति



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लछित बरफुकन ने एक पहाड़ी की चोटी पर जमकर शत्रु की स्थिति का स्वयं निरीक्षण किया था। प्रस्तुत दृश्य ने उन्हें इतना अभिभूत कर लिया कि यह सोचते हुए उनके गालों से आँसू ढुलकने लगे : "कैसा दुर्भाग्य है कि मेरे देश को मेरे सेना-पतित्व-काल में इस घोर संकट का सामना करना पड़ रहा है। मेरे राजा की रक्षा किस प्रकार होगी ? मेरी भावी पीढ़ी कैसे बचेगी ?'' इस युवक सेनापति की पीठ पर थे कुशल प्रधान मंत्री अतन बरगोहाई। युद्ध में एक स्थिति ऐसी आई जब गोहाटी छोड़ देने की बात उठी। तब अतन बरगोहाई ने जो मंत्रणा दी, उसकी आज भी सार्थकता है : "यदि अब तुम गोहाटी दे देना चाहते हो तो इतने दिन लड़ कर हमारे जन-धन की ऐसी हानि करने का क्या लाभ हुआ ? रामसिंह ने पुरानी सीमाओं की पुनः प्रतिष्ठा की माँग पर बल दिया है। यदि हम मान जाएँ तो भी पता नहीं मुग़ल सम्राट रामसिंह का प्रस्ताव स्वीकार करेगा कि नहीं––यों वह प्रस्ताव ऐसा है जैसे राख से राजमार्ग बनाने का प्रस्ताव। इसका भी क्या निश्चय है कि असम शासन में रामसिंह का उत्तराधिकारी अपने पूर्वाधिकारी की प्रतिज्ञा का आदर करेगा। तब हम क्या करेंगे ? फिर, गोहाटी छोड़ कर हम जाएँ भी तो कहाँ ? हमें गरगांव (राजधानी) भी छोड़ देनी पड़ेगी, और नामरूप की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ेगी।"

सराईघाट (गोहाटी से लगे हुए नदी-क्षेत्र) पर अन्तिम नौसैनिक मोर्चे के समय लछित बरफुकन ने जो शब्द कहे थे, आक्रमण को वापस खदेड़ देने के असम के भीम प्रयत्नों के सन्दर्भ में उन्हें पढ़ कर, आज भी रोमांच हो आता है। अपने एक सेनानी को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था : "अपने आदमियों से कह दो कि मैं यहीं, इसी जगह मरूँगा। मैं अन्त तक अपने कर्तव्य से डिगूंगा नहीं।" उन्होंने घोषणा की थी : "मुग़ल भले ही मुझे ज़िन्दा पकड़ लें पर मेरे देश-वासियों को शांति से अपने-अपने घरों में रहने दें।" यद्यपि उस समय वे तीव्र ज्वर से ग्रस्त थे और उन्हें डोली में लाया ले जाया जाता था पर उनकी अजेय आत्मशक्ति इन शब्दों में व्यक्त हुई थी : "महाराज ने मुझे सेना का सर्वाधिकार सौंपा है। उन्होंने सामग्री का विशाल भंडार दिया है कि मैं शत्रु से लड़ सकूँ। तब क्या मैं युद्ध से मुँह मोड़ दूँ, पत्नी की गोद में मुंह छिपा लूँ, बच्चों के बीच लौट जाऊँ ?"

सेनापति के स्फूर्तिप्रद शब्द दावानल की तरह फैल गए और जब एक रक्षक-दल युद्ध से विमुख होता जा रहा था तब लौटते हुए सैनिकों को एक सेनानी ने अद्भुत रीति से रोके रखा। उसने न तो प्रचलित परंपरा के अनुसार अपना अधिकार लादने की चेष्टा की, न स्वयं पलायन किया, वह तो घुटने टेक कर उनके सामने बैठ गया और देशभक्ति की भावना से गूँजते हुए इन शब्दों का उच्चार किया : "हे मेरे देशवासियों, यदि तुम सोने की इस थाली में विष डालना चाहते हो तो कृपा करके यहाँ से भाग जाओ।" ऐसी देशभक्ति तथा कर्त्तव्यपरायणता का परिणाम क्या होगा––इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। राजा रामसिंह की असफलता तथा पराजय की स्मृति असमियों को लछित बरफुकन के प्रेरणा-प्रद नेतृत्व का स्मरण कराती है और सरायघाट शौर्य तथा जन्मभूमि प्रेम की सम्पूर्ण सार्थकता का प्रतीक बन गया है।

चिरकाल तक दासत्व में बँधे लोगों का अपकर्ष होने लगता है, लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है, मानव-आत्मा सरलता से कुचली नहीं जा सकती। हो सकता है आक्रोश और विद्रोह की भावना प्रारंभ में थोड़े से ही लोगों में रहे, परन्तु शीघ्र ही वह औरों में भी फैल जाती है। यह भावना ब्रिटिश-भारत में दृष्टिगोचर हुई थी। तब पूरे भारत में देशभक्ति के साहित्य का प्रभूत सृजन हुआ था। यह सत्य है कि यह समस्त साहित्य वास्तविक अर्थ में साहित्य नहीं है और न ही सबका सब आक्रोशपूर्ण ही है। देशभक्ति की भावनाएँ अनुनय तथा परिहास में भी अभिव्यक्ति पा सकती हैं। इन सब अभिव्यक्तियों का चरम उद्देश्य था : सर्वसाधारण को उस स्थिति का बोध कराना, जिसमें वे डाल दिए गए थे और उनके हृदय में अधिक सुख-स्मृद्धि तथा स्वतंत्रता की भावना जगाए रखना। गत शताब्दी (1849) में जो आवाजें बुलंद हुई उनमें से एक तेजोमयी वाणी थी आनन्दराव ढेकियल फुकन की, जिन्होंने अपने देशवासियों को इन स्वरों में जगाया :

"स्वदेशीय बांधव सकल ! तुम में से किसी में मातृभूमि की सुख-स्मृद्धि का विचार नहीं। तुम अपना, केवल अपना विचार परितोष खोजते हो।"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शताब्दी-परिवर्तन के समय कमलकान्त भट्टाचार्य ने तेजपुरा महल के प्रांगण में एक प्राचीन प्रस्तर-मन्दिर का खण्डहर देखा। भारत के अतीत में जो कुछ भी महान था, वह उन्हें उस सबका प्रतीक लगा और उनकी वाणी इस प्रकार कविता में फूट पड़ी :

**एक दिन आएगा—**
**जब इस प्रस्तर-खंड से सैकड़ों मैज़िनी जन्मेंगे,**
**शत-शत गैरीबाल्डी पैदा होंगे,**
**और भारत के संसार को ज्योतिर्मय कर देंगे।**

भारतीय दासता की चेतना तथा स्वातंत्र्य कामना इस शताब्दी के प्रारंभिक काल की कविता का एक सशक्त स्वर रही है। लेखकों ने अतीत-इतिहास के गौरव-गान गाए, उन्होंने लोक परम्परा की संपन्नता की ओर दृष्टिपात किया इनमें देशभक्तिपूर्ण भावनाएँ प्रतिबिम्बित हुईं। उन्होंने ऐतिहासिक विषयों पर नाटक और उपन्यास लिखे, लोक-काव्य को राष्ट्रीय महत्त्व की वस्तु मानकर उसका पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया। अनेक गीत राजनीतिक प्रतीकात्मकता से अनुप्राणित हो गए। और इस प्रकार के वीर-गीतों ने 1857 में असम से अँग्रेज़ों को निष्कासित करने के लिए मणिराम दीवान तथा अन्यों द्वारा किए गए प्रयत्नों का जनता को स्मरण कराया :

**तुमने सोने का हुक्का पिया,**
**तुमने चाँदी का हुक्का पिया,**
**क्या अपराध था तुम्हारा—**
**कि तुम्हारी गर्दन फाँसी के फन्दे में जकड़ी गई।**

यहाँ संदर्भ यह है कि मणिराम दीवान को दिखावे के लिए मुकद्दमा चलाकर फाँसी पर लटका दिया गया था।

देशभक्ति व्यंग्य में भी अभिव्यक्ति पा सकती है—जैसे बंगाल में बंकिमचन्द्र और असम में लक्ष्मीनाथ बैजबरुआ के साहित्य में। बैजबरुआ बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक तथा व्यंग्यकार थे। उनके व्यंग्य पैने होते थे—जैसे उनके निबंध 'असमी महान लोग हैं' का व्यंग्य, जिसमें उन्होंने बताया है कि असमियों में महानता के ऐसे तत्व विद्यमान हैं जैसे धैर्य तथा एकता—धैर्य तो एक जड़ गाय जैसा है, और एकता 'एक-ता' के अर्थ में यानी जहाँ प्रत्येक को एक अपनी ही चिन्ता हो। असमी चरित्र की समस्त निर्बलताओं तथा गतिहीनता को प्रतिबिंबित करने के लिए बैजबरुआ ने मटके जैसे पेट तथा लम्बी चुटिया वाले कृपाबर बरबरुआ का सृजन किया। परिणामस्वरूप जब पाठक कृपाबर की हरकतों पर हँसता था तो वस्तुतः वह अपने ऊपर हँसता था। ऐसे व्यंग्य का उद्देश्य अन्ततः राष्ट्र-निर्माण ही था और उसके पीछे देशभक्ति पूर्ण भावनाओं की प्रेरणा थी।

यह ठीक है कि शान्तिकाल में व्यक्ति को देश के प्रति अपने कर्तव्यों के विषय में हर समय सजग रहने की आवश्यकता नहीं होती, इसीलिए ऐसे काल में साहित्य में भी देशभक्तिपूर्ण भावनाओं के अधिक उदाहरण नहीं मिलते। सर्वविदित है कि प्राचीन ग्रीक साहित्य में देशभक्ति एक शक्तिशाली प्रेरणा थी। ग्रोटे ने कहा है कि हेरोडोटस के इतिहास का रूप उसकी देशभक्तिपूर्ण भावनाओं के साँचे में ढला है। इस सबका कारण यह है कि यूनानियों को आक्रमणकारियों और 'वर्बरों' के साथ निरंतर युद्ध करना पड़ा था।

टामस जैफरसंन ने विद्रोह के विषय में ये शब्द कहे हैं : "कभी-कभी छोटा-मोटा विद्रोह होता रहे तो अच्छा रहता है।" यह शायद इसलिए कहा गया है कि वह नितचर्या के वृत्त से हमें झकझोर कर बाहर निकाल सकता है। परन्तु


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशभक्ति बनाए रखने के लिए हम सदा संकटों को—भीतरी और बाहरी संकटों को—तो आमंत्रित कर नहीं सकते। कठिन समय में जब कि हमारी राष्ट्रीय सत्ता ही दाँव पर लगी हुई है और हमारे प्रतिष्ठित मूल्य एवं मान्यताएँ खतरे में हैं, इस विशिष्ट स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक बल हमें अपने प्राचीन इतिहास तथा साहित्य के प्रेरणादायक उदाहरणों से ही मिल सकता है। यह सचमुच बड़ी मनोरंजक बात है कि आगे बढ़ने के लिए व्यक्ति को कैसे पीछे की ओर देखना पड़ता है। भारत को 'रामराज्य' के लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए गांधीजी ने भी पौराणिक अतीत की ओर दृष्टिपात किया था।

हाँ, ऐसे ही समय में अपने अतीत के समस्त उत्साहवर्धक और प्रेरणादायी तत्त्व ग्रहण करने की प्रवृत्ति हमारे भीतर जागती है—इतनी कि ऐसी लोकोक्तियाँ भी नई अर्थवत्ता ग्रहण कर लेती हैं जिनका मन्तव्य यह है—"मर्द की मौत रन में, औरत की जनन में।" वे हमें अतीत की कठोर वास्तविकताओं की याद दिलाती हैं और स्वतत्रंता का जो मोल हमने चुकाया है उसकी।

परन्तु यह भी सत्य नहीं है कि व्यष्टि एवं समष्टि परक गुण सदा प्रस्तुत रहते हैं और संकट की घड़ी में प्रबुद्ध हो उठते हैं। बहुत कुछ इस पर निर्भर है कि नागरिकों के रूप में देशवासियों के क्या गुण हैं और किसी महान उद्यम में सहयोगी होने के नाते उनकी क्या विशिष्टताएँ हैं। शिक्षा ही बालक को सिखाती है कि वह महान परम्परा का उत्तराधिकारी है कि अतीत में उसके पूर्ववर्तियों ने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था। प्रचार ही जनसाधारण को नितचर्या की जड़ता से उबारता है और आवश्यक बलिदान के लिए सन्नद्ध करता है। भारत जैसे लोकतंत्रीय देश में ऐसी शिक्षा-पद्धति का बड़ा महत्त्व है जो सामूहिक शिक्षा का मोल स्वीकार करे और बालक को अपने परिवेश के प्रति तथा उन मूल्यों के प्रति जागरूक बनाए जो समाज में प्रतिष्ठा पा चुके हैं।

**अन० वीणा जैन**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गीति-नाट्य

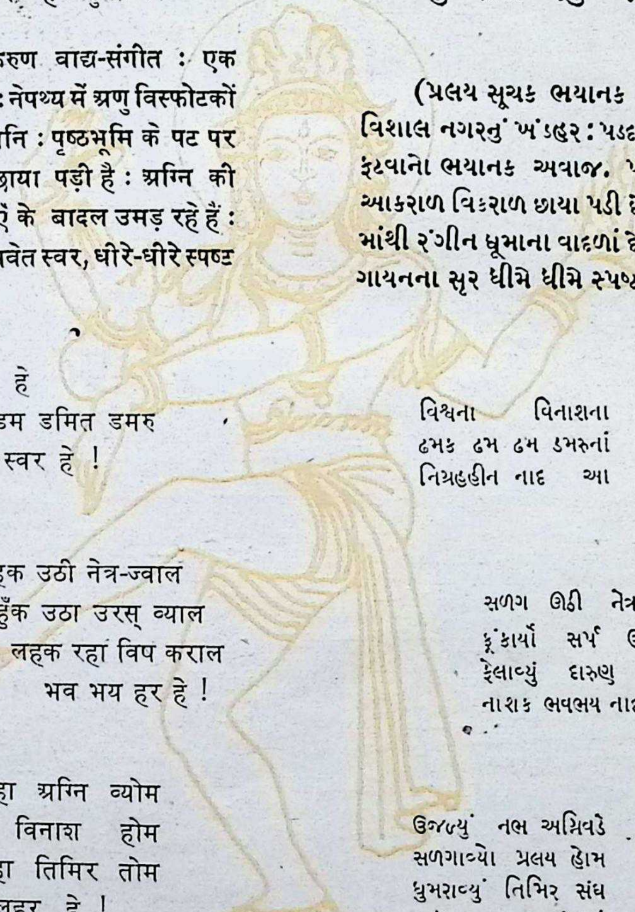

## ध्वंस-शेष

सुमित्रानंदन पंत

गुजराती अनु० ग० ह० पुराणिक

(विप्लव सूचक भीम-करुण वाद्य-संगीत : एक विशाल नगर का खण्डहर : नेपथ्य में अणु विस्फोटकों के फूटने की भयानक ध्वनि : पृष्ठभूमि के पट पर महाध्वंस की विकराल छाया पड़ी है : अग्नि की लपटों में लिपटे रंगीन धुएँ के बादल उमड़ रहे हैं : सुदूर से वाहित गीत के समवेत स्वर, धीरे-धीरे स्पष्ट होकर सुनाई देते हैं।)

प्रलयंकर हे
डम-डम-डम डमित डमरु
दुर्दम स्वर हे !

दहक उठी नेत्र-ज्वाल
फुँहुँक उठा उरस् व्याल
लहक रहा विष कराल
भव भय हर हे !

उगल रहा अग्नि व्योम
रच रहा विनाश होम
घुमड़ रहा तिमिर तोम
लहर-लहर हे !

## ધ્વંસ શેષ

સુમિત્રાનંદન પંત

ગુજરાતી અનુ૦ ગ. હ. પુરાણિક

(પ્રલય સૂચક ભયાનક કરુણ વાદ્યસંગીત એક વિશાલ નગરનું ખંડહર : પડદાને પાછળ અણુબમોનાં ફૂટવાનો ભયાનક અવાજ. પડદા પર મહાનાશની આકરાળ વિકરાળ છાયા પડી છે. આગની જવાળાઓ માંથી રંગીન ધૂમાના વાદળાં દેખાય છે. દૂરથી આવતા ગાયનના સૂર ધીમે ધીમે સ્પષ્ટ સંભળાય છે.

વિશ્વના વિનાશના
ઢમક ઢમ ઢમ ડમરુનાં
નિગ્રહહીન નાદ આ

સળગ ઊઠી નેત્રઝાળ
ફૂંફાર્યો સર્પ ઉરનો
ફેલાવ્યું દારુણ વિષ
નાશક ભવભય નાદ આ

ઉજળ્યું નભ અગ્નિવડે
સળગાવ્યો પ્રલય હોમ
ઘુમરાવ્યું તિમિર સંઘ
તરંગ તરંગમાં



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वस-शेष भू दिगंत
एक वृत्त हुग्रा ग्रंत
भार मुक्त ग्रब ग्रनंत
जग जित्वर हे !

भस्म स्वार्थ कलुष शोक
ध्वस्त नगर ग्राम ग्रोक
निखर रहे नव्य लोक
विश्वम्भर हे !

भौतिक मद हुग्रा चूर
मानस भ्रम हुग्रा दूर
चेतन में उठा पूर
शिव शिवतर हे !

**(ग्रंतरिक्ष में पुरुष ग्रौर प्रकृति का प्रवेश : पुरुष ज्योति रश्मियों से ग्रावृत्त, प्रकृति इन्द्रधनुषी छाया से वेष्टित है।)**

**प्रकृति :**

देख रहा दुःस्वप्न हाय, क्या धरती का मन !
महाध्वंस-सा छाया कैसा घोर चतुर्दिक्
घहरा रही प्रलय की छाया जन धरणी पर
ग्रंधियाली के डाल भयानक ग्रंध ग्रावरण !
उद्वेलित हो उठा धरा चेतना सिंधु क्यों
प्लावित करने ग्रन्न प्राण मन के पुलिनों को ?
नील सरोरुह-सी कुम्हला कर म्लान दिशाएँ
महाशून्य की पलकों-सी मुँद रहीं तमस में !
लील रहा घन ग्रंधकार भयभीत ज्योति को,
छिन्न-भिन्न कर किरणों के झीने सतरंग पट :
धुंधली-सी पड़ रही रूप रेखाएँ जग की
ढाँप रहा क्या विश्व ग्लानि से निज विषण्ण मुख ?
ध्वंस भ्रंश हो रहे संघटन जड़ भूतों के
समाविस्थ-सा ग्राज हो रहा स्थूल जगत् क्यों।

જગ સારુ પ્રલયશેષ
એક ગોળ સર્વધ્વંસ
થયું અનંત નષ્ટ ભાર
દિગ્વિજયોત્સુક નાદ આ

સ્વાર્થ રાખ વિલાપ પાપ
નષ્ટ પુરી વૃક્ષ ગામ
ઉજ્વલ બન્યો ભવ અભિનવ
વ્યાપિત જગ નાદ આ

ઐહિક મદ ચૂર્ણ થયો
ભ્રાંતી મનની દૂર થઈ
આવી રેલ ચેતનમાં
મંગલ વધુ મંગલ આ

**(આકાશમાં પ્રકૃતિ અને પુરુષનો પ્રવેશ: પુરુષ જયોતિ કિરણોના મંડલથી અલંકૃત અને પ્રકૃતિએ મેઘધનુની છાયારૂપી ઓઢણી ઓઢી છે)**

**પ્રકૃતિ :—**

જોઈ રહ્યું શું અશુભ સ્વપ્ન ધરાનું મનં
પસરે છાયા પ્રલયની જેમ ચારો દિશામાં
જવનિકા આડે કરી તિમિરની વિશાળ રુદ્ર
શા માટે ઉછળ્યો ચેતના રવિ ધરતીનો
પલાળવા અન્ન પ્રાણ અને મનની રેતને
દિશા થઈ ફીકી કરમાઈ નીલ કમલસમ
મહાશૂન્યના પડદાસમ બંધ થઈ અંધારામાં
બીવેલું તેજથી પીગળી ગયું અંધારૂં
કકડા કરી સપ્તરંગી પટના ઝીણાં કિરણનાં
લુપ્ત થઈ જગતની સ્પષ્ટ આકૃતિ રેખાશું
વિશ્વગ્લાનિથી ઢાંકે શું મુખ ધરતી ફીકું
જડસૃષ્ટિનો હ્રાસ નાશ શું થયું યા વિઘટન
સમાધીમાં વિલિન્ન થયું શું આખુ સ્થૂલ જગત





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

### [विप्लव सूचक वाद्य संगीत]

प्रलय वलाहक-सा घिर-घिर कर विश्व क्षितिज में
गरज रहा संहार घोर मंथित कर नभ को,
महाकाल का वक्ष चीर निज अट्टहास से
शत-शत दारुण निर्घोषों में प्रतिध्वनित हो !
अगणित भीषण वज्र कड़क उठते अंबर में
लप-लप तड़ित शिखाएँ टूट रहीं धरती पर,
महानाश किटकिटा रहा कटु लोह दंत निज
विकट धूम्र वाष्पों के श्वासोच्छ्वास छोड़ कर ।
रंग-रंग की लपटों की जिह्वाएँ लपकाकर
हरित, पीत, आरक्त, नील ज्वालाओं के घन
घुमड़ रहे विद्युत् घोषों के पंख मारकर
ज्वलित द्रवा के निर्झर बरसा अग्नि स्तंभ-से ।
धू-धू करता ताम्र व्योम, धू-धू जलती भू,
धू-धू बलतीं दिशा, उबलता धू-धू सागर,
भभक रही भू की रज, दहक रहे गल प्रस्तर,
सुलग रहे वन विटपी, धधक रहा समस्त जग ।

### [विप्लव गर्जन]

प्रकृति :

क्या होगा तव देव, हाय, इस भूत सृष्टि का,
रूप रंग रेखामय मेरी निरुपम कृति का ?
मुग्ध प्रेम की पलकों पर सौंदर्य स्वप्न-सी
मोहित करती रही सदा जो स्वर्ग लोक को ।
विश्व प्रभव के सृजन हर्ष से पुलकित होकर
सूक्ष्म स्थूल के छायातप को गुंफित कर नित
जिसमें मैंने अपने रहस कला-कौशल से
सीमा में निःस्सीम, अचिर में बाँधा चिर को,
मृत्यु तमस् में गूँथ अमरता के प्रकाश को
चेतनता को अर्थ ध्वनित है किया शब्द में ।
अपने उर के रक्त-दान से जिस निसर्ग को
युग-युग से अविराम स्नेह श्रम से सिंचित कर
विकसित मैंने किया नित्य नव श्री सुषमा में
रूप गुणों के सतरंग ताने-वाने भरकर ।

### (સંહાર સૂચક વાદ્ય સંગીત)

જગતનાં ક્ષિતિજ પર વિપ્લવ કરે મેઘસમ
વલોણું નભનું ભીષણ કરી પછી ગર્જના પ્રલયની
ફાડી આપના હાસ્યથી વસ્ત્ર વક્ષનું મહાન્તકના
પ્રતિધ્વનિ જેનો શત ગુણભીષણ સાંભળ્યો સૌએ
અસંખ્ય કરાલ વિજળીનો સાદ ઉઠ્યો ગગનમાં
કડ કડ તૂટ પડી જ્વાળા વિજળીની ભૂમિપર
મહાકાલ કકડાવે કરાલ દાંત નિજ લોહના
છોડી ધૂમા આંસુનો પોતાનાં શ્વાસોશ્વાસવડે
લપલપાવી જ્વાળા જીભની વિવિધ રંગી મેઘની
આરક્ત હરા પીળા અને નીલવર્ણ જ્વાળાઓનાં
ધૂમડના વાદળાં વિજળીનાં પાંખ વડે ગરજે ને
વરસે દ્રવ ઘોર જે પાવકનાં સ્તંભ જેમ
ગગન લાલ ધૂ ધૂ કરતી બળે ધરતી ધૂ ધૂ સારી
બળતી ધૂ ધૂ ચારે દિશાઓ ઉછળી રહ્યો ધૂ ધૂ સિંધુ
પ્રજ્વલ થઈ પાંસુ ભૂની પીગળી ગયા પથ્થર તપ્ત
કાનન તરુ સળગી રહ્યા સળગી ઉઠ્યું વિશ્વ સર્વ

### (વિનાશ કાળની ગર્જના)

પ્રકૃતિ :--

હે દેવ શું થશે તારા માનવ લોકનું
શુ થશે મારા રુપરંગ રેખામય અતુલ કલાકૃતિનુ
મુગ્ધ પ્રણયના લોચનના રુચિર સ્વપ્નસમ
મોહિત કરે સ્વર્ગ લોકને ત્રણે કાલમાં નિરંતર
જગ નિર્માણના જન્મ મોદથી જે થઈ રોમાંચિત
ન્હાની મોટી છાયા અને તાપને ગૂંથ્યાં એક ઠાણમાં
પોતાની રહસ્યમય કલાકૌશલ્ય વડે જેમાં મેં
રચ્યું નિઃસીમને સીમામાં અને ચિરને અચીરમાં
ગૂંથ્યૂ અમરને મરણમાં અને પ્રકાશને તિમિરમાં
અર્થને ચેતન તત્વમાં સૂચિત કર્યા શબ્દ નિર્મિતિમાં
હૈયાનું આપી લોહી જે આપના લોકને
યુગ યુગાન્તરથી નિરંતર સ્નેહશ્રમથી સીચી
પ્રફુલ્લ બનાવ્યાં સૌંદર્યમાં અભિનવ શ્રી પ્રીતીને
રૂપ ગુણોનાં સપ્તરંગ તાતણાં ભીતર વણી



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सृजन आनंद द्योतक वाद्य संगीत]

कैसे प्रहसित हुई नीलिमा मौन गगन की,
धरती को रोमांच हुआ कब हरियाली में,
कैसे नाच उठीं सागर उर में हिल्लोलें,
अवचनीय है मर्म कथा उस रहस् सृजन की।
मुझे याद है, सुधा कलश-सा पूर्ण चन्द्र जब
रजत हर्ष से छलक उठा था : प्रथम उषा के
मुख पर सहसा जब लज्जा की लाली दौड़ी
इन्द्र-धनुष का सेतु टँगा जब फेनिल नभ में।
अभी-अभी तो फलों के अपलक दृग अंचल
आकांक्षा से रंगे स्वप्न भावनावेश में,
समा सकी प्राणों की आकुल सुरभि न उर में,
कोयल का आवेश स्वरों में फूट पड़ा शत।

[करुण वाद्य संगीत]

कैसे मैं अमरों की इस प्यारी संसृति का
देख सकूँगी करुण ध्वंस आसुरी शक्ति से,
जिसको मैंने माँ की मृदु ममता क्षमता से
सतत सँवारा निज अंतर के निभृत कक्ष में।
तड़ित कोप से विघटित हो भौतिक विधान सब
वाष्प धूम बन तितर-बितर हो रहा शून्य में,
खौल रहा अणु विगलित जड़ द्रव्यों का साग
सूर्य खण्ड ज्यों टूट, धँस गया हो धरती में।
उमड़ रहे दुर्गंधपूर्ण उच्छ्वास विषैले
धरा गर्भ की अग्नि फूट आई है बाहर,
गूँज रहा अह, महामृत्यु संगीत चतुर्दिक
चकाचौंध में बिखर रहे नक्षत्र पुंज हों।
उमड़ रहे दैत्यों-से भूधर धरा गर्भ से
हिल्लोलों-से उठ गिर, क्षण-भर में विलीन हो।
महा प्रबल अणु के विघात से दीर्ण धरित्री
खण्ड-खण्ड हो रही रिक्त मिट्टी के घट-सी।

[विश्व-प्रलय-सूचक वाद्य-संगीत]

पुरुष :

कातर मत हो प्रकृति, तुम्हें यह मर्त्यों की-सी

(નવ નિર્માણનાં આનંદ દ્યોતક વાદ્ય સંગીત)

શાંત ગગનની નીળી શોભા કરતી ચારૂ સુહાસ્ય
હરિત તૃણોના રોમાંચથી પુલકિત થઈ ધરતી
સાગર હૃદયમાં કેમ નાચી ઉઠ્યાં મોજાં
છે સૃષ્ટિજન્મની ગૂઢ કથા અવર્ણનીય
યાદ મને છે પૂર્ણ ચાંદલો જ્યારે છલકયો
અમૃત કલશ સમ પ્રથમ ઉષાનો શુભ્ર મોદ ઉછળ્યો
મુખ પર જ્યારે લાલી આવી અભિનવ લજ્જાની
સંભારૂં છું જ્યારે જોયો સેતુ મેઘધનુનો ફેણયુક્ત નભમાં
હમણા ભાવના વેગમાં ફૂલો જોતા! અનિમિષ નેત્ર
સ્વપ્ન આપતું ન સમાવી શકી રંજીત જે ઇચ્છાથી
કોયલ જ્યારે પરમ સુગંધ ને સમાવી શકી ન હૈયામાં
આવ્યો બહાર સોગણો સ્વર તેનો પૂરા જોશમાં

(કરુણ વાદ્ય સંગીત)

શી રીતે જોઉ હું. દેવોના આ પ્રિય સૃષ્ટિનો
ધ્વામણો વિનાશ શક્તિ વડે દાનવના
મેં કોમલ પ્રેમ સામર્થ્યથી આંતરના ભાગમાં
ગુપ્ત સમાર્યાં જેમને માતાના નિરંતર હેતથી
વિદ્યુતના કડાકાથી વસ્તુમાત્ર ભગ્ન થઈ
શૂન્યમાં વરાળ ધૂમ બની વિખરાઈ ગયી
આમતેમ તત્: ઘનપદાર્થનું આણું આણું થઈ ગયું
સૂરજના અંશ જેમ પૃથ્વી પર તૂટી પડ્યું
ફેલાવ્યો ઝહરિલો દુર્ગંધી ઉચ્છ્વાસ
પૃથ્વીના આંતરથી ફૂટી પડ્યો અગ્નિ બહાર
જગદંતક ગાઈ રહ્યો સર્વ દિશામાં ગાન મહાન
ચૂર્ણ થયું, નક્ષત્ર રાશિ વિખરાઈ આકાશમાં
પૃથ્વીના પેટથી બહાર આવ્યા ગિરીરાજા અસુરોના પ્રભાવથી
જો મોજાના સંક્ષોભથી ઉપર નિકળી લુપ્તથયાપળમાં
પ્રકાંડ આણુના સ્ફોટથી ફાટી છે ધરતી
કકડા કકડા બની ખાલી ઘડા ના જેમ

(જગતના નાશ સૂચક વાદ્ય સંગીત)

પુરુષ :—

પ્રકૃતિ ન ઘબરાઓ તમને આ માનવ સમ





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुण क्लीवता नहीं सुहाती, शांत करो मन ।
भूत प्रलय यह नहीं, मात्र यह मनः क्रांति है,
आरोहण कर रही सभ्यता नव शिखरों पर !
अंतर्मन की ही विभीषिका वाह्य जगत् पर
प्रतिविम्बित हो रही भयावह, भाव प्रताड़ित ;
भौतिक अणु यह नहीं, दलित मानव आत्मा का
न्याय कोप ही टूट रहा पावक प्रताप-सा
जीर्ण धरा मन के खंडहर पर, जो युग-युग से
मनुज द्वेष की घृणित भित्तियों में विभक्त है ।
आज युगों के रुद्ध मूक मानव अंतर का
विकट नाद ललकार रहा निज मनुष्यत्व को,
संघर्षण चल रहा घोर मानव के उर में
यह विराट विस्फोट उसी का राम दूत है ।

કરુણ કાયરતા છાજતી નથી થાઓ શાંત
નથી આ નાશ જગતનો, છે આ ક્રાંતિ મનની
આતો અભિનવ સંસ્કૃતિ ચઢે છે ઉચ્ચ શિખર પર
હૈયાના અંદરના ભયંકર ભીતિનો પડછાયો
પડે છે બાહ્ય જગત પર હાંકેલો મનોવૃત્તિથી
નથી આ પાર્થિવ અણુ, છે આ સાચો ક્રોધ
હમલો મર્દિત મનુજ આભાનો, અગ્નિનાપરાક્રમ સમ
વરસે જે પૌરાણિક મનના અવશેષ પર
વિભાગેલો સૈંકોથી નાના નિંદિત દિવાલોમાં
દબાયેલો યુગો સુધી લોકોનો આ કરાલ સ્વર
લલકારે છે સૌને માનવતાના નાદ વડે
પ્રક્ષોભ મનુજ વક્ષોમાં ઉભરાણો છે ભયંકર
તેનો આ વિરાટ વિસ્ફોટ છે રામ દૂત

**[स्वार्थ, लोभ आदि की बौनी कुरूप छायाकृतियाँ कुत्सित चेष्टाओं का अभिनय करती हैं, जिनके ऊपर एक विराट् घन की छाया भूल कर चोट करती है]**

**(સ્વાર્થ, લોભ વગેરેની ઠિંગણી વિકૃત છાયાકૃતિઓ કદુપી હાવભાવ કરે છે અને તેના ઉપર એક વિશાળ મેઘની છાયા ભૂલથી ફટકો મારે છે)**

मानव ही है सर्वाधिक मानव का भक्षक,
भौतिक मद से वुद्धि भ्रांत युगजीवी मानव
दानव बनकर आत्मघात कर रहा अंध हो !
शोषक शोषित में विभक्त अब युग मानवता,
जाति-पाँति में, वर्ग -श्रेणी में शतशः खंडित
धनिकों का, श्रमिकों का, धन-बल का, जन-बल का
यह अंतिम दुर्धर्ष समर है विश्व विनाशक
सामूहिक संहार तिक्त विष फल है जिसका
जाग रहे हैं आज युगों के पीड़ित शोषित
दैन्य दुःख के जड़ पंजर नव युग चेतन हो
कर्म कुशल जग जीवन के श्रम जीवी शिल्पी
लोक साम्य निर्माण हेतु सब एक प्राण हो ।
टूट रहीं कटु लौह शृंखलाएँ जनगण की
रज जीवी पावक कण हो रहे प्ररोहित
आज रुद्र निज अग्नि चक्षु फिर खोल प्रज्ज्वलित
भस्म कर रहे भू का कल्मष दृष्टि ज्वाल से
अवचेतन के मनोज्ञान से पीड़ित मानव

નરથી નથી કોઈ નરનો મોટો અંતક
અનંત કાળ જીવી માનવ ઐહિક મદથી ખોઈ બુદ્ધિ
રાક્ષસ થઈ અંધ બની કરે છે પોતાનો નાશ
ચૂસિત ચૂસનારમાં ઉચ્ચનીચ જાતિમાં ભિન્નવર્ણ કોટિમાં
માનવ લોક વિભક્ત આજ વિવિધ ખંડ ખંડમાં
શેઠ અન મજુરનાં રાવ અને રંકના
સંઘર્ષનું નિર્ણાયક દુર્ગમ આ યુદ્ધ છે
ભંજક સર્વ લોકનો વિલયનકારી જગતનો
તીખો ઝહરિલો પરિણામ છે જેથી જાગી રહ્યા આજ
ચિરકાલથી ચૂસિત દીન જીવ વિનાના પાંજરાઓ
બન્યા સચેતન, કાર્યદક્ષ જગ કર્મચારી
કલાકારો જગતના સામ્યવાદના સર્જન સારું
આજ થઈ ગયા છે એક જીવ
આજ માનવની તૂટી ગઈ લોહ બેડી
તેજોમય. અગ્નિસમ ક્ષુદ્ર જંતુ થઈ ગયા
રુદ્ર આપણી વહ્નિની આંખ ઉઘાડે પુનરપિ
બાળી નાખે પાપ ધરતીનું પ્રખર જ્વાળાથી
અવચેતના સ્થિતી જાણી બને છે દુઃખિત માનવ



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवरोहण कर रहा तिमिर के अतल गर्त में
यंत्रों की आसुरी शक्ति से जन का अंतर
बिखर रहा जीवन प्रमत्त हो बहिर्जगत् में।

[सैनिकों तथा श्रमिकों के वेश में कुछ लोगों का प्रवेश]

कुछ स्वर :

जूझ रहे अणु के दानव से भू के जनगण,
जूझ रहे हैं महानाश से अपराजित जन,
अब निसर्ग के तत्त्वों ने अपना अदम्य बल
जन मन में भर दिया, मनुज की मांस पेशियाँ
पर्वत सी उठ रोक रहीं दुर्धर्ष शत्रु को,
नाच रहा जन के शोणित में जीवन पावक,
दौड़ रही उन्मत्त शिराओं में शत विद्युत्,
बहते हैं उनचास पवन उनकी श्वासों में।
भीत नहीं होगा मानव इस महानाश से,
विश्व ध्वंस से लोक करेंगे नव जग निर्मित,
श्री समत्वमय मनुष्यत्व को नव्य जन्म दे।

कुछ स्वर :

फिर से मानव शिशु खेलेंगे भू श्मशान में,
पुनः बहेगी जग के मरु में जीवन धारा,
मरुत् भर रहे प्रबल शक्ति जन के प्राणों में
विस्तृत करता वरुण तरुण वक्षःस्थल उनका।
भस्मसात कर रही अग्नि जीवन का कर्दम,
मुक्त हो रहा इंद्रासन फिर महाव्याल से,
शेष उर्ध्व फन खोल उठाता भू को ऊपर
फहराते दिङ्नाग मनुज की विजय ध्वजा को!

ઉતરે છે અંધારાના તળહીન વિવરમાં
રાક્ષસી સામર્થ્યથી યંત્રોના, નિષ્પ્રેમ થયું હૈયું નરનું
બન્યું ઉન્મત્ત જીવન અખિલ જીવ લોકમાં

(સિપાહીઓના અને મજુરોનાં વેશમાં કેટલાક લોકોનો પ્રવેશ)

કેટલાક સ્વર :—

ધરાની જનતા લડે છે અણુરૂપી રાક્ષસોને સામે
દુર્ધર્ષ જન લડે છે વિશ્વ સંહારની સામે
કુદરતના તત્વો એ લોક માનસમાં
દુર્દમ શક્તિ રેડી દીધા, માંસ પેશી સકલ નરની
ઉઠીને ગિરીસમ રોકી રહી દુર્જય અરિઓને
કૂદે છે પ્રાણાગ્નિ મનુજોનાં રુધિરમાં
દોડે છે શત સૌદામિની જોશ ભરી નસનસોમાં
ઉનતાલીસ વાયુ વહે જોશથી હરેક શ્વાસમાં
ડરશે નહી જનગણ આવા મહાધ્વંસથી
આ મહાનાશમાંથી માનવ રચશે અભિનવ લોક
શ્રી નવી સર્જે છે માનવતા સકલ સમાન

કેટલાક સ્વર :—

પુનરપિ રમશે બાળકો ધરતીનાં શ્મશાનમાં
વહશે પુનઃ જીવનની સરિતા જગતના મરુ પ્રદેશમાં
વાયુ ભરી રહ્યો પ્રબલ જોર માનવના પ્રાણોમાં
યુવ જનના છાતીને ફુલાવતો વરૂણ સગ
જીવનના કાદવની રાખ કરે છે વહ્નિ
મહાસર્પના ફેણથી છૂટી ગયું સિંહાસન ઇન્દ્રનું
શેષનાગ ઉપર ઉઠાવી ફેણ પોતાનો, પૃથ્વીપર
ફરકાવે દિગ્ગજ પતાકા માનવ વિજયની



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## कला चर्चा

# आपतकालीन स्थिति और कलाकार

दिनकर कौशिक

चीनी आक्रमण के साथ-साथ चारों ओर से उसकी प्रतिक्रिया भी दिखाई दी। जवानों ने अपने जान की बाज़ी लगाई, कृषकों ने अपनी आंतरिक श्रद्धा को स्नायविक रूप में दिखाया। हर पेशे का मनुष्य अपने-अपने अनुसार, अपने क्षेत्र के मुताबिक, ऐसा कार्य करने में प्रवृत्त हुआ कि जिससे हमलावर परास्त हो जाए। निश्चय ही प्रतिक्रिया प्रखर थी, लेकिन श्राव्य थी। द्वेष की भित्ति पर कोई भी देश क्षण भर में एक हो सकता है। और फिर चीनियों ने जो अपना विस्तारवादी रूप दिखाया था उसका जवाब हमें सिर्फ नारों से नहीं कार्यों से, त्याग से और दुःख, संकटों का सामना करते हुए देना था। इस समय सभी नागरिकों ने अपनी शक्ति के अनुसार देश रक्षा का बीड़ा उठाया। सभाओं में रक्तदान, स्वर्णदान, वित्तदान की एक अभूतपूर्व बाढ़ दिखाई देने लगी। उधर पूर्वी हिमालय के मस्तक पर क्रूर और निपुण आक्रमणकारी विशेष जयघोष के सिवाय ही अपना अमंगल हस्तक्षेप कर रहे थे। सारी जनता सुन्न होकर सुन रही थी। भारत अपनी शांति नीति का शिकार हो रहा था। 'मुँह में मिट्ठू बगल में छुरी' यह नीति व्यक्तिगत क्षेत्र में कितनी ही त्याज्य और गर्हनीय हो, राजनैतिक क्षेत्र में उसका गौरवपूर्ण स्थान है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान, प्रीति-संधियों पर हस्ताक्षर, 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के निमित्त कपि नृत्य, इन सब मुखड़ों के



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

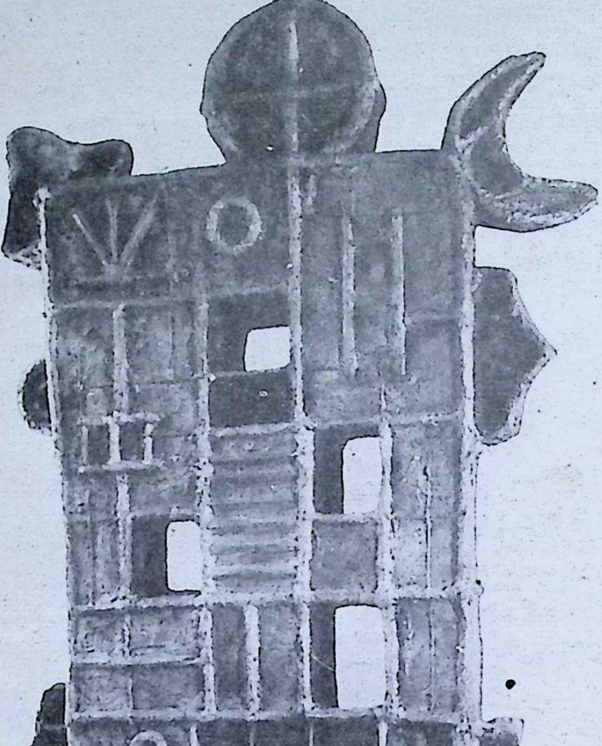

धनराज भगत—
कॉस्मिक-मानव





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे चीनी जादूगर अपना हस्तक्षेप कर रहा है, इसका लेशमात्र अन्दाज़ भारतवासियों को नहीं था और इसका फल पूरी मात्रा में हमें मिल रहा था।

इस आपात में कलाकार क्या करेगा? कलाकार को क्या करना चाहिए? कलाकार 'कस्मै देवाय:' अपना ही विष प्रदान करेगा?

कलाकार तो सब बातों में एक साधारण मनुष्य होता है। उसके स्नायु इतने बलवान नहीं रहते कि वह उनका उपयोग स्थूल शक्ति-साधना में लगा सके। वह बन्दूक उठाकर जोश में दाएँ बाएँ करे तो कन्धे उसको जवाब दे जाएँ। खेतों में वह सिर्फ़ 'खेत के बिजूका' का काम दे सकता है। रक्तदान की शय्या पर हो सकता है, रक्त उलटा उसकी ही तरफ बहने लगे। कलाकार की अपनी असाधारणता है उसकी आँखों में, हाथों में और मस्तिष्क में, जहाँ वह रूप रत्नों को प्रतिभासित करता है। कलाकार को क्या करना चाहिए, इसका एक ही उत्तर हो सकता है, और होना भी चाहिए कि कलाकार कला ही सृजित करेगा, और कुछ न तो वह कर सकता है न करना चाहता है। पर, प्रश्न उठता है "कलाकार जिस कला को रूपायित करता है उसमें आपात का विरोधी स्रोत होना जरूरी है। उसको अपनी सारी शक्तियाँ और सारे तनाव आपात की चीनी दीवार को चूर-चूर करने में लगाना चाहिए। कलाकार की बन्दूक कला है। उसकी तोप और आणुविक शक्ति कला ही है। कला को कुशलता से, पूरी शक्ति से शत्रु पर चलाए और शत्रु शिविर में आतंक मचा दे।"

और एक मत का कथन है:

"कलाकार कला को जो रूप देता है वह क्रिया नल खोल कर पानी को बहाने जैसी सरल और यंत्रगत नहीं है। कलाकार की कला मूर्त्त होती है, कुछ अर्धज्ञान सर्जन-शील अन्दरूनी प्राण-प्रवाह से। इस प्रवाह को कोई नल की चाबी फिराकर रोक नहीं सकता या खोल कर बहा नहीं सकता। कला का प्रवाह झरने की तरह होता है। वह हिमानी माँ की गोद से चल पड़ता है, भीतरी बाहरी अनुकूलता की वजह, और वह बहता है अपने जलधर्म के उचित भूमि के समतल से। उस जल का उपयोग किसान करें, पान्थ करें, पक्षी गण करें, या हिंस्र पशु करें। जल बहता है उसी में उसका धर्म काम, साधना और मोक्ष विद्यमान हैं।

कलाकार को तो कला के अश्वमेध यज्ञ के सिवाय और कुछ दिखाई ही नहीं देता। कलाकार दुर्दान्त दुर्जेय और अमर अश्वों को विश्व में दौड़ाता है। उनको कोई हरा नहीं सकता। वह घोड़े विजय माल धारण करके जब शत्रु के शिविरों में पहुँचते हैं तो उनको रोकने वाला कोई नहीं होता। उनको देखकर खुद शत्रुगण स्तंभित रह जाते हैं। वे कहते हैं 'क्या रूप है। कितना निहारें इनको। अश्वराज आज आपने हमें पराजित किया और धन्य किया। आज आप आपके सर्जक, आपके धात्री पुरुष धन्य हैं। आज तक हमने अपनी स्वाभवजन्य कटुता से आपके देश के साथ बुरा बर्ताव किया लेकिन अब आपका अश्वमेध यज्ञ सफल हो रहा है। अब हम आपसे शत्रुता नहीं रखेंगे। धन्य है वह भूमि जो ऐसी कला को पुष्पित करती हैं, जिसमें देश, जाति, लिंग और वर्ण आदि सर्वभेद निशेष हो रहे हैं। मानव जाति को भविष्य के स्नेहमय जगत का साक्षात्कार करा रही है। जय जगत्!'

दूसरे दल की यह बात सुनकर पहला दल कहेगा 'जय पागल!'

इस जगह मेरा एक विनम्र निवेदन है। स्नेह में पागल लोगों की वजह से ही आज तक दुनिया विनाश पथ से बचती आई है। ईसामसीह, बुद्धदेव या महात्मा जी का पागलपन दैवी प्रसाद था। एक गाल पर मारने से दूसरा बढ़ाना क्या पागलपन नहीं था? जो दुःख दे उसको स्मितमुद्रा से आशीर्वाद देना मात्र पागलपन ही कहा जाएगा। हिन्दू मुसलमानों के पाशवी-रक्तपात के बीच बिना किसी हथियार के जान को संकट में डाल कर स्वयं कटिबद्ध होना और आवाहन करना "शृणवन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा:" यह भी पागलपन का एक गुबार था। लेकिन ऐसे ही पागल लोग हमारी मानवता को बचा रहे हैं, पुष्टि दे रहे हैं। यही लोग मानवता के अश्वमेध यज्ञ पर अपनी आहुति चढ़ा रहे हैं। मुझे तो लगता है कि कलाकार एक पागल है। वह अपने पागलपन से हमारे जीवन के सारे द्वेष, कटुता तथा स्वार्थों को दूर करने की चेष्टा करता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनकर कौशिक—संरचना



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

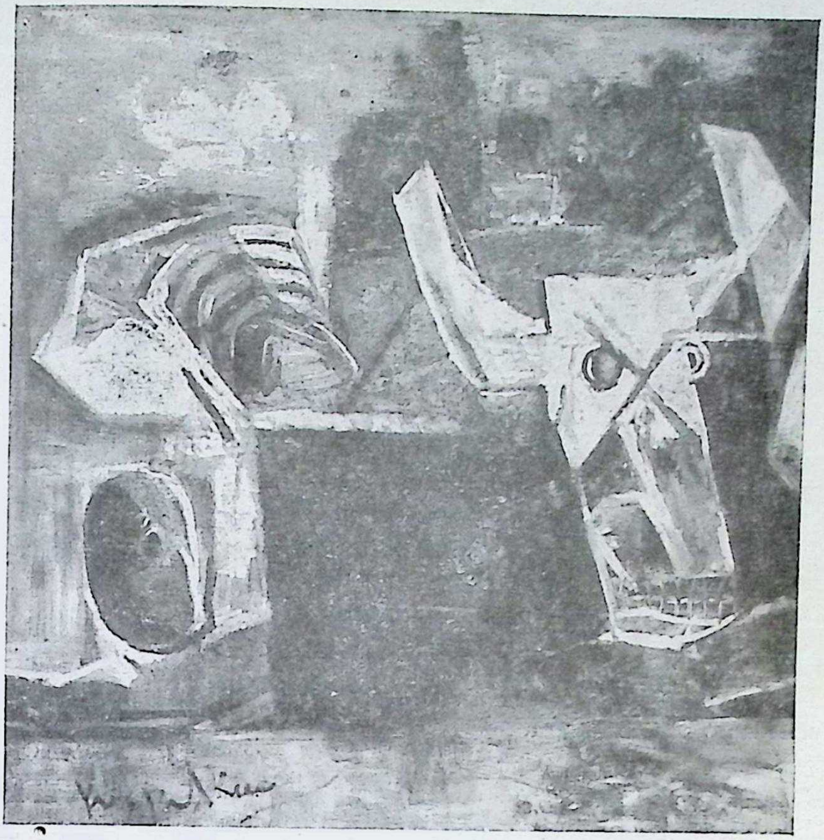

के० एस० कुलकर्णी
गीत की मृत्यु

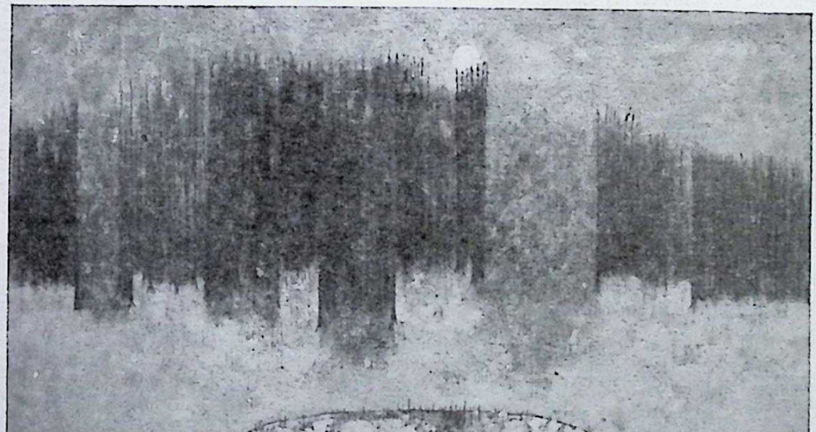

ओमप्रकाश शर्मा
चाँदनी में खजियार



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक़बूल फ़िदा हुसैन—प्रकोप



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**असमिया** हेम बरुआ

**उड़िया** चिन्तामणि बेहेरा

**उर्दू** गोपाल मित्तल

**कन्नड़** अ० रा० मित्र

**कश्मीरी** प्रेमनाथ दर

**गुजराती** शशिकान्त कड़किया

कोत्त मंगलम सुब्रह्मण्यम् **तमिल**

कालोजी नारायण राव **तेलुगु**

स्वर्ण **पंजाबी**

कल्याणी सेन **बंगला**

सविता पारिजात **मराठी**

# भारतीय कविता

**मलयालम** वल्लतोल

**संस्कृत** वासुदेव द्विवेदी

**हिंदी** माखनलाल चतुर्वेदी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## असमिया

अहो कुमारी पृथ्वी
युग-युग से चिर परिचित तुम हो मेरी ।
भूल तुम्हें क्या सकता हूँ मैं ?
हम इन्सानों का कारवाँ
जिन्दगी के कितने ही संकरे पुलों को पार करता
चाह रहा है प्राण-सहारा मरु में आज !
अनागत रवि के धीमे प्रकाश के
झिलमिलाते सपने
मन के मैदानों में
रचते हैं नए अखाड़े !
ओ स्वप्न-सनी मधुरा पृथ्वी मेरी
जिसकी स्मृतियों के हस्ताक्षर
रक्त के कण-कण में बसते हैं
उसे हम कैसे भूल सकते हैं ?
कहता है मन, किसी संगीत की यति से
हो सकते यदि हम निःशेष !
मौत ? मौत क्या ऐसी है आसान ?
ओ प्राणमयी कविता मेरी !
भूल न पाई मुझे कभी तुम
उन्मुक्त यौवना पृथ्वी मेरी
मैं यह भी जानता हूँ !
चलाते हैं हम हल, हमारे हलों की नोकों पर
जाग-जाग उठतीं स्वर्ण सीताएँ
मिट्टी में बोए हमारे सारे श्रम के बीज,
करते सहस्रों सृजन जीवाणुओं को प्राणवान
वसन्त मुखरित !
कौन सकता है जीवन को रोक ?
निज जीवन प्रांगण में हम रचते रहते
हजारों कंसों की मरण चिताएँ !
ओ मेरी चिर यौवना आदिम पृथ्वी !
चिर परिचित वही हास
तुम्हारे अधरों पर अब भी खिला हुआ
हँस उठा आज हमारे साथ
जन-मानव का दल !
हमारे खून से
उबल उठा है ज्वाला का प्लावन;
सूर्य, नवीन ओ सूर्य !
कुंती बनाओ कुमारी पृथ्वी को
कुंती बनाओ तुम !



# पृथ्वी

हेम बरुआ

अनु० नवारुढ़



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# टिड्डी-दल

चिंतामणि बेहेरा

उड़िया

टिड्डी-दल के घेरे से
मनुष्य-फूल को बचाना होगा
बचानी पड़ेगी मानवता की फसल
मनुष्य का सूर्यमुखी मन

सस्मित और सविमल शस्य
आज आकाश-प्रान्तर में
जीवन के सब्ज बन्दरगाह में
हरित केदार में और मनुष्य के आलोक मन्दिर में
उसी टिड्डी-दल ने फैलाए हैं
अपने ध्वंसकारी पंख, और
लहू चूसने के लिए खोला है अपना मुख

टिड्डी-दल के विनाश के हेतु
किया है खेत-मिट्टी ने आयोजन
मिट्टी का मनुष्य अगर चाहता है बचना इस मिट्टी पर
यदि चाहता है मानव-समाज अपने अस्तित्व की रक्षा
करके मनुष्य का जय-गान
उगा कर इस धरती में फसल
प्राण में भरकर
अग्नि-कण, मानवता, मुक्ति और ऐक्य-भाव
तो मारने को टिड्डी-दल आज
हे सखा, शीघ्र आयोजन करो।

टिड्डियों का वंश निर्मूल करना पड़ेगा
निर्मूल करना पड़ेगा लहलहाते हुए खेतों के शत्रु को
देश-देश में इस विश्व के विस्तीर्ण आकाश में।

तब तो आएगी मुक्ति
धरती के आलोक में, वायु में
मुक्त होगी मानव-फसल विकसित होगा सारे विश्व में
सूर्यमुखी जीवन का फूल !

अनु० उपेन्द्रकुमार दास



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू

# मेरा देश

गोपाल मित्तल

ऐ देश तुम्हारी गलियों की प्रणाम, जहाँ--
यह साधारण रीत है कि जो चाहे सिर तान कर चले,
जहाँ कोई भी बँधन नहीं, सिवाय सावधानी के
कोई चाहे सँभल कर चले या लखखड़ाता चले

ऐ देश तुम्हारी गलियों को प्रणाम जहाँ--
मेरे उन्माद का दण्ड ईंट-पत्थर नहीं हैं,
जहाँ गेहूँ के दाने पर कोई अपराध नहीं किया जाता
मेरा सौभाग्य है कि मैं उस स्वर्ग का वासी हूँ।

तुम्हारी गलियों को प्रणाम कि जो सदा उदार रहीं
मेरे लिए मित्रों के हृदयों की भाँति,
मैं, जो एक आवारा और नास्तिक था, किंतु तूने
सदा एक स्नेहमयी माँ की तरह मुझे क्षमा किया।

तेरी वायु को प्रणाम, तेरे वातावरण को प्रणाम--
जिन की देन मेरी कविता, मेरा संगीत है--
मेरे दिल की गहराइयों से वंदना है कि प्रलय तक
तेरी माँग में खुशियों के तारे जड़े रहें।

उनका दुर्भाग्य है जो कि अन्यायों के अभ्यस्त हो चुके हैं--
वे मेरे बाँकपन को भी छीन लेना चाहते हैं,
वे जो रात में पले हैं, जिन्हें प्रकाश सह्य नहीं,
वे मेरे घर के भी दीप बुझाना चाहते हैं।

मुझे अपने सम्मान की सौगंध है कि मैं
अपने हृदय के संगीत की हर एक धुन में आग भर लूँगा
तूने स्नेह दिया है तो मैं भी आत्म सम्मानी पुत्र हूँ।
अपने कलम की नोक को भाले की नोक बना लूँगा।

अनु० के० कुमार



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़

# सैनिक के प्रति

अ० रा० मित्र

ओ सैनिक तुम्हारा काम अत्यन्त कठिन है
हम तो व्यर्थ गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाने वाले
निरीह प्राणी हैं !

आज की विषम परिस्थिति में
हम सभी लोग
लेखक, व्यापारी, कामगार
व्यर्थ कर रहे हैं दौड़धूप !

निश्चय, ही यह व्यर्थ है
यह आपतकालीन स्थिति जन्य आवेश मात्र है--
अस्थायी है यह ।

कितने दिन टिकेगा यह आवेश
यह तो क्षणिक है,
समुद्र की गहराई क्या उस समय नापी जाय
जब ज्वार उठ रहा हो ।

हम तो उस बर्तन की तरह हैं
जिसमें गिर रही है तेज धार, फेनों वाली :
और अधिकांश रहता है खाली
और, बह जाता है जल बाहर ही बाहर !

वर्षा का पानी जब तेजी से गिरता है
तो सभी वस्तुएँ भर जाती हैं पानी से, कीचड़ से,
पर, जब सूर्य की तप्त किरणें उन्हें छूती हैं
तब वह जल सूख जाता है ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार, बालक अपने पहाड़े याद करते समय
उन्हें हृदय में नहीं उतारता,
मात्र रट लेता है।

उसी प्रकार,
कवि पुंगव विशाल शब्द भंडार से
चन्द शब्द लेकर
रच देता है अपना एक छोटा-सा पद।

समझता है उसने कवित्व-धर्म निभा लिया।

और, धाराप्रवाह भाषण देकर
राजनीतिज्ञ पा लेता है अपना मनोनीत
फिर, वह अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझता है।

यदि वह कुछ विशिष्ट ख्याति चाहे
तो कोष के लिए धन बटोर कर
अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाता है।

हे वीर योद्धा
सचमुच, तुम्हारा कार्य अत्यन्त कठोर है
भारत के भाग्य नियंता तुम्हीं हो।

देश पर घिर आए शत्रुओं को
अपना रक्त देकर, वीरता के साथ
बचाने वाले तुम्हीं हो।

अपने को उत्सर्ग कर
हिमालय की रक्षा के लिए
विजय-ध्वज संभाले केवल तुम प्राण देने तैयार हो,
हम तो
केवल शब्द वीर हैं।

अनु० कमल नारायण



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# दो पुत्र

**- प्रेमनाथ दर -**

हजरत आदम के दो पुत्र
एक ने श्मशान लिया, दूजे ने कब्र,

और यह धरती, हिंद की एक ही धरती
रंगारंग फूलों से शोभित,
अपने-अपने विचारों में सब प्रसन्न ।

किन्तु, देशहित, सभी एक मत ।

प्रज्ज्वलित है संपूर्ण विश्व में यह भारत,
ऊँचे हैं जिसके पहाड़
बड़े-बड़े हैं जिसके मैदान
बोली हैं विविध, अलग-अलग है
जिनका रंग,
पर सभी, एक परिवार के अंग ।

हजरत आदम के दो पुत्र
एक ने श्मशान लिया, दूजे ने कब्र !

अनु० श्याम परमार



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती

# रणभेरी

## शशिकांत कड़किया

चीनियों को रणभूमि से हटाने रणभेरी बज उठी

यह दिवाली जनमूल्य लिए बिना कैसे मनाएँ
हम सब संकल्परूपी शस्त्रों से सुसज्जित हों
नफा, स्वार्थ तथा रिश्वत खोरी को त्याग कर
मातृभूमि की विपत्ति में रक्षा करने का व्रत लें

हमारे सर्वोदयी विचार और कार्य
हमारे अमोघ अस्त्र सिद्ध होंगे
दानवों को संहारने के लिए
मानव मूल्यों की रक्षा के लिए !

अनु० सुलभा पुराणिक



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चीनी विस्फोट

तमिल

## कोत्त मंगलम सुब्रह्मण्यम्

धनुष लाओ, बंधु मेरे, धनुष लाओ ।
विजय मणि अनुगूँज मंडित धनुष लाओ ।।

देश बढ़ता वीरगति से, धनुष लाओ,
ताल पर दे ताल, पगध्वनि को सजाओ ।
चीन के कटु दर्प का चूरा बनाओ,
वीरता के पाँव में पायल जगाओ ।

शूल हाथों में सजाए हे षडानन !
शपथ लेते हैं तुम्हारे शूल की हम !
शपथ आज त्रिशूल की है, हे महाशिव !
लाज रखना नित्य निज स्वातन्त्र्य की तुम ।

गगन-चुंबी देवमंदिर शुभ्र गोपुर,
वेंकटाद्रि, महान कावेरी हमारी ।
हे जननि, मुग्धे मनोन्मणि नित मनोरम,
मोहिनी पूर्णोपमा कन्याकुमारी ।

जननि की शुभ कोख में आए तभी से,
सुन रहे हैं हम सदा वह वेदवाणी ।
शपथ है उस वेद की अब, नित्य जिसमें
थीं निनादित काव्य गरिमाएँ हमारी ।

भक्ति से करते रहे यदि ईश अर्चन,
प्रीति ले जाते रहे यदि मंदिरों में ।
और यदि हे सत्य, हम पढ़ते रहे हैं
महाभारत की कथा पावन स्वरों में ।

तो सदा हम धर्म की रक्षा करेंगे,
युद्ध के मैदान में डटकर लड़ेंगे ।
है हमें निज देवताओं की शपथ अब,
प्राण कर अर्पित अमर बनकर रहेंगे ।

चढ़ रहे, जो बढ़ रहे, हिमगिरि शिखर पर,
लड़ रहे, लड़कर चढ़ाते प्राण अपने ।
उन जवानों के सदा बढ़ते चरण की,
शपथ हमको, जो हमारे अंग अपने ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरण जो उठकर गिरें, गिर कर उठें फिर,
घोर सर्दी में ठिठुर कर नित्य बढ़ते।
रक्त लथपथ, पत्थरों से हुए घायल,
चरण जो पर्वत शिखर पर नित्य चढ़ते।

उन चरण की शपथ हमको आज है फिर,
वह भुजा जिसने कि अब बन्दूक धारी।
शपथ है उन सुदृढ़ कंधों की, जिन्होंने,
प्राणप्रिय स्वातन्त्र्य--रक्षा की हमारी।

शपथ खाते आज बापू की जिन्होंने,
स्वर्णमय स्वाधीनता हमको दिलाई।
शपथ उन अनगिनत वीरों की जिन्होंने,
सीख बापू की सदा ले, की लड़ाई।

जब तलक अरि को न सीमा से भगा दें,
सेज के बदले धरा पर शयन होगा।
जब तलक हिमगिरि जवाहर को न सौंपे,
तब तलक हमको न क्षण भर चैन होगा।

हे जवाहर! आपकी आज्ञा मिली जो,
वह हमें स्वीकार, हम पालन करेंगे।
एक पा संकेत तेरा, हम मरेंगे,
भेंट हिमगिरि की, चरण तेरे धरेंगे।

तुम हमारे नयन की हो ज्योति सुन्दर,
लाल हो तुम प्राण से प्रिय हे जवाहर!
जो बना चिंतन तुम्हारा देश के हित,
हम दिखा देंगे उसे सच्चा बनाकर।

गौ-वृषभ के खेल में जैसे अकारण,
गाय को बंदी बना लूटा किसी ने।
ठीक वैसे छिप-छिपाकर चीन आया,
लूट ली धरती हमारी है उसीने।

जिस तरह से धूप में निश्चिंत होकर,
मनुज कोई वस्त्र अपने है सुखाता।
लूट ले कोई उसे चुपचाप आकर,
और साहूकार बनकर डर दिखाता।

जिस तरह अंगना उगे तरु नारियल के,
लूटकर कोई उसे अपना बनाए।
खेत सीमा चिह्न को बल से हटाकर
रौब से अधिकार अपना ही जताए।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सदा से मान्य थी अँग्रेज़ द्वारा,
युगयुगों से ही रही सीमा हमारी ।
कह रहा है चीन क्यों मानूँ उसे मैं ?
युद्ध फिर करने लगा हमसे अनाड़ी ।

चींटियों के दल सदृश सेना बनाकर,
आगया वह सरसराता देश भीतर ।
जिस तरह से आग धकधक फैलती है,
उस तरह से फैलता ही गया सत्वर ।

जिस तरह डाकू धड़ाधड़ घुस रहा हो,
हाथ में थामे हुए जलती मशालें ।
उस तरह उसने हमारी धरा लूटी,
और अब भी चल रहा है कुटिल चालें ।

किन्तु हमने भी मजा उसको चखाया,
चोट ऐसी दी कि फिर वह सकपकाया
दौड़कर इक़रार का संदेश लाया,
युद्ध बंदी का कुटिल धोखा दिखाया ।

पूछते हैं हम, बिना पूछे भला वह
क्यों हमारे देश भीतर आज आया ?
पास उसके प्रश्न का उत्तर नहीं है,
है निरंकुश इसलिए बस चला आया ।

किन्तु भारत भूमि पर जिसने धरा पग,
कुचलने को शीश उसका चलो वीरो !
की हिमालय पर घिघोरों ने चढ़ाई,
कमर उसकी तोड़ने को, बढ़ो वीरो !

धर्म पर अन्याय करने जो बढ़े हैं,
गर्व उसका भस्म करने, बढ़ो आगे ।
लवण खाया जिस धरा का नित्य हमने,
अब उसी का मान रखने, बढ़ो आगे ।

इस घड़ी में जो निरा आराम चाहे,
वे निट्ठले घरों में दुबके रहेंगे ।
मान की रक्षा जिन्हें है प्राण से प्रिय,
वे बहादुर देश हित, आगे बढ़ेंगे ।

चीन के छक्के छुड़ाने बढ़ो वीरो,
वीर सेनानी बनो, शेरो दहाड़ो ।
सिंह मुद्रा पदक से होकर सुशोभित,
तौलकर निज शौर्य, दुश्मन को निकालो ।

अनु० मेघराज 'मुकुल'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेलुगु

# कलम और कूँची चल पड़ी

## कालोजी नारायण राव

बटमारों और लुटेरों की
खबर लेने वाले ओ सिपाही !
देश की सरहदों की
रक्षा में लगे ओ वीर सिपाही !
सुनो, हमारी बात सुनो !

पहाड़ों की तराइयों में
ठिठुरा देने वाली ओस में
मन में वीरोत्साह ले
बैरियों से लोहा ले रहे हो तुम

अष्टपदियों औ' जावलियों की
मधुर तान तोड़ आज
समरगीत गाते हो
नगाड़ों की तान पर !

क़लम और तूलिका चलाने वाले तो
कामिनी के चेलांचलों की
हिलोरों की चोरी-चोरी के
सपनों को ही चित्रित करेंगे ?

घने काले अलकों में
कृष्णसर्प को देखने वाली आँखें
प्राकार पर से रेंग आने वाले
पन्नगों को नहीं देख सकेंगी ?

तिरछे नयन बाण की चोट से
हाहाकार मचाने वाले ये दिल
गाँस. निकालने पर तुली
लाल नजरों को पहचान नहीं सकेंगे ?

सौन्दर्य पान करने वाले
ये कवि कलाकार
पंचतंत्र के कुतन्त्रों के
धोखे का अन्दाज नहीं लगा सकेंगे ?



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतकर से भी अंगारे
बरसा सकने वाले जादूगर
शंकर के विषम नेत्र से
अग्नि वर्षा नहीं करा सकेंगे ?

कोमल कुसुमों में भी
बाण की धार चढ़ाने वाले
कलम और कूंची को
तलवार नहीं बना पाएँगे ?

वात्स्यायन के निगूढ़ तत्त्वों की
वास्तविकता को जानने वाले
वर्तमान दशा की सच्चाई के
स्वरूप को नहीं जान सकेंगे ?

बटमारों और लुटेरों की
खबर लेने वाले ओ सिपाही !
देश की सरहदों की
रक्षा में लगे ओ वीर सिपाही !

सुनो, हमारी बात सुनो !

पहाड़ों की तराइयों में
ठिठुरा देने वाली ओस में
मन में वीरोत्साह ले
बैरियों से लोहा ले रहे हो तुम !

कलम और कूँची में है गति
है निहित उनमें शक्तित्रय,
प्रण लेकर ये दिनरात
बलदान करेंगी तुम्हारे तन मन को ।

समयोचित वीरोवेश
धर कर, उत्साहित करने
चल पड़ीं कलम और कूँची
स्वर सधा साथ-साथ में ।

शरीर का बल बढ़ाने
मन में उत्साह भरने
चल पड़ी कलम और कूँची
स्वर सधा साथ-साथ में ।

अनु० भीमसेन 'निर्मल'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबी

# उजली बर्फ पर खून के धब्बे

स्वर्ण

आज अचानक कॉफी हाउस में
आवाज़ों का तैरता बजरा
ऐसे रुक गया है
जैसे किसी चट्टान के समीप
किसी बँधे पानी की हलचल रुक जाए ।

सन्नाटा.....................

गहन सन्नाटा.................

दूर देश की सीमाओं पर
हिमगिरि लावा उगल रहा है
हिम के असंख्य कण
पूर्व-पश्चिम में बिखर रहे हैं

(कॉफी में ऊष्मा कम है—
बर्फीली ठंडी कॉफी है)

रक्त का उत्ताप अनायास कम हो गया है
अत्यंत मंद !

उजले हिम के पेड़
रुई के पहाड़ों से
सुन्दर, दिलकश ।

पर, अगर रुई के इन कोमल फोहों पर
काले ख़ून के धब्बे उभर उठें
तो आँखों को कैसे भाएँ ?

अनु० शांतिदेव





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**बंगला**

# सैनिक-पति के प्रति

कल्याणी सेन

तुम फ़ौजी वर्दी में सजे हुए घर आए
और, तुमने अपनी माँ से कहा,
—'कल सुबह चला जाऊँगा
पता नहीं, बन्दूक-राइफलों के जंगल से
कब लौट कर आऊँगा।'
तो, मैंने लाल फूलों की माला तुम्हें पहनाई नहीं
मैंने चंदन तिलक तुम्हें नहीं लगाया
नहीं की तुम्हारी आरती-बंदना
या, तुम्हारे सकुशल लौट आने की पूजा और प्रार्थना !
मैंने इतना ही किया
कि बेहोश होकर फर्श पर गिर नहीं पड़ी, रोई तक नहीं,
सिर झुकाए चुपचाप मेरे-तुम्हारे आगत शिशु के लिए
स्वेटर बुनती रही
उगाती रही एक-एक बंधन में आशाओं के फूल !
तुम जा चुके हो, मुझे पता नहीं, कब वापस आओगे।
मैं अखबार पढ़ती हूँ, माँ को सुनाती हूँ
तुम्हारे आगत शिशु के लिए नई नई लोरियाँ बनाती हूँ
मुझे पता नहीं, तुम कहाँ हो,
बिना पते-ठिकाने की आती हैं तुम्हारी चिट्ठियाँ
सीमा पर बंद है युद्ध, बीत चुकी हैं सर्दियाँ
गर्मी आ गई है, पिघल रहा है हिमालय का वर्फ
हवा में फिर लू लपट भर आई है
अब कुछ ही दिनों में मॉनसून फटेगा
बरसात आ जाएगी, आसमान से बादल छँटेगा !
मुझे पता नहीं, तुम कब वापस आओगे
बिना पते-ठिकाने की आती हैं तुम्हारी चिट्ठियाँ
मगर, सुनो, कान में कहती हूँ—तुम आ रहे हो
नन्हे-से शिशु बन कर बहुत जल्दी तुम आ रहे हो
अपने साथ नया युग, नए गीत ला रहे हो।
इस गीत और इस युग का प्रणाम तुम्हें भेजती हूँ
आगत शिशु की हर मुस्कान तुम्हें भेजती हूँ।
तुम जब भी आओगे
तीन युग और तीन गीत तुम्हारा स्वागत करेंगे—
तुम्हारी माँ की ज्योतिहीन आँखों में उजाला भर आएगा,
तुम्हारी पत्नी का आश्वस्त चेहरा
खुशी के आँसुओं से गीला हो जाएगा।
और, तुम्हारा नन्हा-सा शिशु
तुम्हारी बाँहों में मुस्कराएगा, मुस्कराता जाएगा
कभी समाप्त नहीं होगी उसकी मुस्कान।

अनु० राजकमल चौधरी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी

# सैनिक का मृत्युपत्र

सविता पारिजात

नए जन्मने वाले शिशु को
नहीं सिखाना अ, आ, इ, ई,
उसकी स्लेट पर पहला अक्षर
रहे एक बस यही 'लड़ाई'।
उसके शाला आते जाते
कभी न कहना 'अच्छा टाटा'
उसके ओठों संदेश यही हो
'बन्दे मातरम् भारत माता !'
उसे ज्ञात हो यथार्थ स्थिति,
कमजोर अहिंसा नहीं सिखाना
जीना सिखलाने के पहले
उसे बताना कैसे मरना ?
दियाधरी के समय साँझ को
नहीं चाहिए ईश प्रार्थना
उसे याद करने दे जी भर
सीमा पर का युद्ध तराना।
कटुतम सत्य यही सिखलाना
'कोई नहीं है दोस्त किसी का'
कल के दोस्त आज हैं दुश्मन
कभी न ले एहसान किसी का
तोता मैना के झूठे किस्से
उसे भूल कर नहीं सुनाना,
वीर रक्त से लिखा हुआ
इतिहास शहीदी उसे पढ़ाना।
झुनझुना नहीं, ना कुत्ता-बिल्ली,
आज व्यर्थ हैं सभी खिलौने,
हिमगिरि प्रहरी खेलेगा वह,
बंदूक-तोप से सीना ताने।
लोरी के मिस उसे सुनाना
गीता का कर्मठ संदेश,
जिसने कौरव गिनगिन मारे
उसी पार्थ का है यह देश।
मेरे मरने की खबर कहो जब
आँखों में मत लाना पानी,
लाल जन्म लेवे जो अपना
अडिग वीर हो, समझीं रानी !

अनु० दिनकर सोनवलकर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयालम

# देववाणी

वल्लतोल

विपुल-पारावार गाता
क्षुद्र सरिता गण समर्पण
बहुलता के क्रोड में शुभ
अल्पमत का बाल-नर्तन

कोटि-तीस उर कैरवों की
राष्ट्रभाषा चंद्र बिंदी
वेदवाणी वरद्-छाया
चर्चितांगी चारु हिंदी ।

राष्ट्र-वीणा तंत्रियों की
सप्त स्वर झंकार तू है,
अमर साधक की अहो,
सब सिद्धियों का सार तू है--

गृहनायिका का श्री मातृपद के
क्षीण शय्या-शायिनी अब
अग्रजा अधिकारिणी चढ़
यवन भाषा स्थान पर अब

युग्म-शत-युग शासिका का
भाग्य-निर्णय तू करेगी ।
भवन में अब आंग्ल-भाषा
शासिता तेरी रहेगी ।

अभय बोलो आज तुम भी
वीथियों के अधर खोलो
भारती-भागीरथी में
मन-मिलन का अमिय घोलो ।

अनु० 'प्रभाती'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत

# सैन्य-गीत

वासुदेव द्विवेदी

सहर्ष तुम बढ़े चलो,
सतत वन्दना करो,
मातृभूमि देव तुल्य, अखण्ड अर्चना करो ।

आपदाएँ झेलना, बिजलियों से खेलना,
अजस्र शस्त्र धार को, मस्तकों पे झेलना,
धीर पुरुष हो, बढ़ो
वीर पुरुष हो, चलो ।
भयरहित चित्त से, चरण अग्रसर धरो ।
सहर्ष तुम बढ़े चलो, सतत वन्दना करो ।

प्राणदायिनी है माँ, त्राणदायिनी है माँ ।
शक्ति-मुक्ति भुक्ति दा, सुधा प्रदायिनी है माँ ।
वन्दनीय मातृभूमि,
श्लाघनीय मातृभूमि,
स्वाभिमान धर्ममान देश के लिए मरो,
सहर्ष तुम बढ़े चलो, सतत वन्दना करो ।

अनु० नरेन्द्र व्यास



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# आह्वान

## माखनलाल चतुर्वेदी

कालिदास ने नगाधिराज कह जिसका गौरव-गान किया
वह हिमाद्रि अब जोर-जोर से हमें पुकार रहा देखो !

जिसके सिर पर मस्तक है वह ढूँढ़ रहा मस्तक वाले
उसके लिए एक से हैं सब लाल, पीत, गोरे, काले

जमना, गंगा, सरजू देकर जो माँ का जीवन-दाता है
मानदंड पृथ्वी का बन कर सदियों से संकट-त्राता है

वही आज हमसे मस्तक का दान माँगता है प्यारे
हम दें, उसकी बलिवेदी पर प्राण माँगता है प्यारे

भले भूमि हो रहे हमारी गायत्री सी ही मधुगात्री
अवध नरेश बना था उस दिन भारत-धरती का पदयात्री

हम ने ही देखा पांडव का प्राणदान हिम की छाती पर
अब हम कैसे भूलें बोलो इस पृथ्वी सी मदमाती पर

शस्त्र उठाओ, नागपाश लो, अरे चीन क्या, कोई भी हो
जो टेढ़ा देखेगा उसकी नैया देंगे डुबो-डुबो

हम पर यह दायित्व कि हम भारत माँ का उद्धार करें
सिर से कफन बाँध लें, सिर दें, इतना मीठा प्यार करें !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# इन्टरव्यू

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ●

श्री हेम बरुआ ●

श्री प्रेमनाथ धीर ●

विभिन्न वर्गों के नागरिकों पर हुई चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया जानने के लिए भाषा के संपादकीय विभाग ने कुछ व्यक्तियों से "इंटरव्यू" लिए।

सबसे प्रथम सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री डा० सुनीतिकुमार चटर्जी से समालाप हुआ। उन्होंने आक्रमण को एक सर्वव्यापी संकट के साथ ही सुरक्षा के प्रति हमारी जागरुकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना। इस संकट ने एकता का जो आदर्श उपस्थित किया उसकी उन्होंने सराहना की।

असमिया के विख्यात साहित्यकार, संसद्-सदस्य श्री हेम बरुआ ने अपने अनुभव के आधार पर प्रतिपादित किया कि असम की जनता ने संकट को दायित्व अधिक और संकट कम माना।

प्रशासकीय अधिकारियों की प्रतिक्रिया पर श्री प्रेमनाथ धीर, उप-सचिव, भारत सरकार ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि सरकार की सहायता पूरी लगन से करनी चाहिए। उनके समालाप में एक असीम त्याग की भावना दृष्टिगत् होती है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## डा० सुनीतिकुमार चटर्जी

"आप शांति की बात कर रहे हैं और ठीक भी है पर इसके दूसरे पक्ष की ओर भी मैं आपका ध्यान दिलाना उचित समझता हूँ। वह यह कि यदि चीन ने इस प्रकार एकाएक भारत पर आक्रमण न किया होता तो एकता का यह आदर्श कैसे संभव होता ? हमें तो चीनियों को धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जो समस्त देश पर उसकी एकता की दृष्टि से हितकारी सिद्ध हुई। यों युद्ध कौन चाहता है ? पर आक्रमण होने पर हम हाथ पर हाथ धरे तो नहीं बैठे रह सकते। आदर्श वक्तव्य या मीठे-मीठे उपदेशों से यह बात न कभी बनी है और न आगे बनने की उम्मीद करनी चाहिए। हमें देश को सशक्त और नागरिकों को जागरुक बनाने के सारे उपाय करने चाहिएँ।

आंदोलन चाहे सामाजिक हो, राजनैतिक या साहित्यिक इसमें ऐसे बीज तो होते ही हैं जो हमारी सोई हुई ताक़त को जगाने में हमेशा मददगार होते हैं। आंदोलन से मेरा तात्पर्य ऐसी हलचल है जो किसी आशंका या आक्रमण के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है और जिसके बारे में हम पहले से कुछ नहीं जानते। शांति की बात करते रहना अब मेरी दृष्टि से एक भ्रम होगा। सच तो यह है कि जितने भी देश शांति के हामी हैं वे भी अपने बचाव के नाम पर युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। हमें भी उस भयावह परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए, जो आक्रमणकारी किसी भी समय हमारे लिए उत्पन्न करने में समर्थ हैं। इसके लिए जो भी राष्ट्रव्यापी तैयारी चल रही है, उसे अपर्याप्त समझना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हम इस बात पर जोर दे सकेंगे कि यह तैयारी पूरी और पक्की किस तरह की जानी चाहिए। मैं 'भाषा' के रक्षा और शांति विशेषांक को इसी दृष्टि से लाभकारी समझता हूँ।

साहित्य से मेरा घनिष्ठ नाता नहीं है। मेरा क्षेत्र भाषा-विज्ञान है। मैं अक्षर के कभी नाश न होने वाले तत्त्व शब्दों की व्युत्पत्ति और उनके व्यापक आदान-प्रदान के मसलों में ही रुचि लेता हूँ। सोचने पर इस बात को समझना कठिन नहीं होगा कि शब्दों का व्यापक आदान-प्रदान राष्ट्रीय एकता को काफ़ी हद तक बल दे सकता है।

## श्री हेम बरुआ

**प्रश्न :**

चीनी आक्रमण का असर असम निवासियों पर ही सर्वाधिक रहा और आप असमवासियों की तत्कालीन मनःस्थिति के सम्बन्ध में बता सकते हैं, इसलिए हम जानना चाहेंगे कि आपके विचार से वहाँ के निवासियों पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई ?

**उत्तर :**

मेरे विचार में तो असम की जनता ने चीनी आक्रमण को गंभीर संकट से अधिक एक निश्चित दायित्व के रूप में गृहण किया। वैसे, जब चीनियों ने थागला घाटी को पार किया, तब ही असमवासियों को अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। सेला और बोमडीला के हाथ से निकल जाने तक वह चीनी आक्रांता की ओर से भय-मुक्त ही थे। इन प्रमुख सैनिक क्षेत्रों के हाथ से चले जाने के कारण नेफा के बहुत से आदिमजातियों के लोग शरणार्थी बन कर ब्रह्मपुत्र के रास्ते असम में आ गए। इन शरणार्थियों के आते ही असम के निवासी और विशेष रूप से विद्यार्थी-युवक और युवतियाँ—उनको आश्रय देने के लिए दौड़-भाग करने लगे और उन्होंने उनकी सहायता के लिए दिन-रात परिश्रम किया। और, असम की सबसे विषम स्थिति उस समय की कही जाएगी, जब चीनियों की फौज पहाड़ियों से उतर कर तेजपुर की ओर बढ़ी। चीनी तेजपुर और ब्रह्मपुत्र से केवल 36 मील दूर रह गए थे। केवल तीन दिन ही असमवासी मानसिक असंतोष और हड़बड़ाहट की स्थिति में रहे।

**प्रश्न :**

आपके विचार में बुद्धिजीवियों और विशेषकर लेखक वर्ग पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई ?

**उत्तर :**

प्रतिक्रिया बहुत अधिक हुई और साहित्यकार तथा उनके कृतित्व पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। तमाम



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय लेखक उसी राष्ट्रीयता की भावना से भर उठे जिसकी तीव्र अनुभूति भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में उनमें अनुप्राणित थी। उनके लेखन में फिर से वही आवेग दिखाई दिया। पर ऐसा लगता है कि उसमें वह गहराई नहीं है जो पूर्ववर्ती स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित साहित्य में पाई जाती है। उनमें वह वह्नि दिखाई नहीं देती जिसकी अनुगूँज ब्रिटिश सत्ता के विरोध में उस समय परिलक्षित होती थी। उस युग ने साहित्यिक जागरुकता पैदा की और विविध प्रकार की प्रणालियाँ साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से निसृत कीं। इसी प्रकार से युद्ध की अनुभूति का भी गहरा असर सीमा के समीप के साहित्यकारों में दूरस्थ रहने वाले साहित्यकारों से अधिक हुआ। जिनने युद्ध को समीप से देखा है, उन्होंने इस आक्रमण के प्रति एक सहज स्वीकार्य की भावना को प्रश्रय दिया है। जिनने दूर से अनुभव किया है उनने भारत की प्राचीन वीर गाथाओं को फिर से बखाना है। पर, सत्य यह है कि उनकी विषय-वस्तु का धरातल रूमानी और भावुकतापूर्ण ही रहा है।

**प्रश्न :**

आपके विचार में इस समय के लिए कौन सी विधा अथवा विषय-वस्तु अधिक समीचीन मानी जायेगी ?

**उत्तर :**

मुझे भय है कि मेरे विचार सर्वमान्य नहीं होंगे और मेरी अपनी धारणा कुछ लोगों को संगत न लगे। मेरा तो विश्वास है कि राष्ट्रीय उद्देश्य रखकर लिखा जाने वाला साहित्य, कृतिकार की वास्तविक अनुभूति नहीं बन पाता। उदाहरण के लिए, मैं बताना चाहूँगा कि मुझे आकाशवाणी से इस संबंध में प्रसारित करने के लिए इकट्ठे किए गए करीब 13,000 गीत देखने का अवसर मिला। मेरे को ऐसा लगा कि केवल संख्या बढ़ाने के सिवाए उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। हाँ, यह सम्भव हो सकता है कि कुछ अंश तक वह जन सामान्य के आवेश को उभारने में सफल हो सकें। शेष रह गई रक्षा की बात, तो उसके लिए तो हमें हमारी रक्षा व्यवस्था का ही आश्रय है। ऐसे लेखन का तो बड़ा सामयिक महत्त्व होता है। इनको पढ़कर एक तेजी तो आती है पर वह एक क्षण तक ही रह पाती है और कभी-कभी तो हम आंशिक रूप से ही उससे प्रभावित होते हैं।

मुझे याद आ रहा है कि पिछले दो विश्व युद्ध में शेक्सपियर का एक वाक्य नारा बन गया था, पर क्या वह वाक्य चिरंतन रह सका। नहीं, वह महज नारे-बाजी तक ही सीमित रहा। निश्चय ही शेक्सपियर का महत्त्व उस सामयिक वाक्य के कारण नहीं बल्कि उसके सारे जनविश्रुत साहित्य के कारण है।

इसी प्रकार से कभी रस्किन ने भी कहा था कि 'जंग सभी कलाओं की जननी हैं' इस बात से सहमत होना आवश्यक नहीं कि युद्ध या जंग, (या मेरे अपने शब्दों में आपतकालीन स्थिति) से ही महान् विश्व-विश्रुत साहित्य का प्रणयन होता है। नाज़ी जर्मनी का उदाहरण हमारे सामने हैं, जहाँ गत महायुद्ध के दिनों में एक भी महत्त्वपूर्ण कृति ऐसी नहीं दिखाई दी, जिसे याद रखा जा सके।

**प्रश्न :**

कृपया यह बताएँ कि आपके विचार में इस स्थिति में लेखक का क्या दायित्व होना चाहिए ?

**उत्तर :**

मैं इसके उत्तर में एक प्रश्न आपसे ही पूछता हूँ। आक्रांता की बढ़ती हुई फौजों को रोकने के लिए आवश्यक क्या है? कविताएँ ? गीत ? कदापि नहीं, इस समय तो हमें जन-शक्ति पर निर्भर करना है। और इसलिए आवश्यक है कि हम व्यर्थ की भावुकता छोड़कर सामूहिक शक्ति आक्रांता के विरोध में लगाएँ। हमें शत्रु का सामना पूरी शक्ति से करना है। विश्वासघाती चीनियों का मुकाबला सत्याग्रह से नहीं किया जा सकता। हमारी आर्थिक तथा सैनिक शक्ति पर ही सब कुछ निर्भर करता है। हमें अपनी रक्षा के लिए अपने को मजबूत बनाना है और शत्रु से लोहा लेने के लिये तैयार रहना है। ●



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## श्री प्रेमनाथ धीर

### प्रश्न :

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि हम 'भाषा' त्रैमासिक का शांति और रक्षा अंक प्रकाशित कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में हमने विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के विचार जानने का निश्चय किया है। मेरे विचार में भारत सरकार में शासन संबंधी कार्य करने वाले अधिकारी भी संकटकालीन स्थिति में अछूते नहीं रहे हैं। इसलिए एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में मैं आपकी प्रतिक्रिया जानना चाहूँगा।

### उत्तर :

आपने शासन-अधिकारी की राय जानने के लिए मुझे चुना, इसके लिए मैं आभारी हूँ। यद्यपि मेरा हिन्दी का ज्ञान बहुत सीमित है, तथापि मैं 'भाषा' त्रैमासिक को नियमित रूप से पढ़ता हूँ और मुझे यह कहते हुए जरा भी संकोच नहीं कि उसके अंक पढ़ कर मैंने अपनी हिंदी संबंधी जानकारी बढ़ाने का प्रयत्न किया है। मुझे प्रसन्नता है कि आप इस प्रकार के समालाप का आयोजन कर रहे हैं ताकि संकटकालीन स्थिति के बारे में जनता तथा शासन के विभिन्न वर्गों की सही राय मालूम हो सके। मुझे अपने देश के प्रति सहज मोह रहा है और संकटकालीन स्थिति में मैं अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि सरकार की सभी योजनाओं में शक्ति भर सहयोग दूं। यह तो आपको मालूम ही है कि राष्ट्रीय-रक्षा-कोश में आर्थिक रूप से जो सहायता दी गई है उसके लिए हम सभी खुशी से तैयार रहे। चूँकि इस समय हम युद्धकालीन स्थिति से गुजर रहे हैं और सरकार सोने के व्यवहार की कमी की माँग कर रही है तब हमारा यह भी दायित्व हो जाता है कि सोने का व्यवहार कम किया जाए।

### प्रश्न :

धीर साहब, आपने जो राष्ट्रीय-रक्षा-कोश और सोने के व्यवहार की कमी की बात की तो यह तो आमतौर पर सभी लोगों के लिए लागू है। हम तो यह जानना चाहते हैं कि व्यक्तिगत रूप से शांति और रक्षा के लिए आप क्या क़दम उठाना चाहेंगे?

### उत्तर :

आपने बहुत अच्छी बात पूछी। मुझे अपने बचपन का स्मरण हो आया। पढ़ने-लिखने में मैं शुरू से ही काफ़ी अच्छा था और अध्ययन की ओर मेरी पूरी रुचि थी। उसी समय मैंने किसी विदेशी लेखक की यह उक्ति पढ़ी, "यदि उसके तीन पुत्र हुए तो वह सबसे कुशाग्र बुद्धि वाले को सेना में, उससे कम बुद्धि वाले को व्यवसाय में तथा सबसे कम बुद्धि वाले को सिविल सर्विस में भेजेगा।" पढ़ने-लिखने में अच्छा होने के कारण यह विचार मेरे मन में घर कर गया और मैंने निश्चय किया कि मैं भी सेना में भरती हो जाऊँगा। भाग्य कहिये या घरेलू परिस्थितियाँ मेरी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। मेरा ख्याल है कि इच्छा मरती नहीं वह किसी-न-किसी रूप में अवश्य पूरी होती है। मेरी यह इच्छा अवचेतन मन में बराबर बनी रही। जब मेरे पुत्र हुए तो एक बार फिर यही इच्छा तीव्र रूप से जागृत हो गई। मैंने इसे अपने पुत्रों को फौज में भेजकर पूरा करने की सोची।

मेरे बड़े लड़के में क़द-क़ामद, जिस्म और बुद्धि की दृष्टि से एक अच्छा फ़ौजी अफ़सर होने के गुण बचपन से ही मौजूद थे। मैंने यह बात उसके मन में डाल दी और यदाकदा इस ओर उसका ध्यान भी दिलाता रहा। बचपन में बोया गया बीज समय पाकर अंकुरित हुआ। उसने भारतीय सेना की प्रतियोगिता परीक्षा पास की और आज वह भारतीय सेना में लेफ़्टिनेंट है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

11355

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**प्रश्न :**

आपको अपने सबसे बड़े पुत्र को सेना में भेजते हुए हिचक तो नहीं हुई ? सबसे बड़े पुत्र पर माता-पिता की ममता विशेष रूप से होती है ।

**उत्तर :**

हिचक ! मैं तो इसे गौरव की बात समझता हूँ । यही कारण है कि मैंने अपने दूसरे पुत्र को भी भारतीय सेना में जाने से नहीं रोका । उसका रुझान शुरू से डाक्टरी की तरफ़ था । चूँकि दोनों भाइयों की अवस्था में विशेष अंतर नहीं है इसलिए बड़े भाई के भारतीय सेना में चले जाने पर वह बहुत अकेलापन महसूस करता था । मैंने उससे कहा कि तुम अपने भाई के प्रति अपने प्यार की पूर्ति उसी का रास्ता अपनाकर कर सकते हो । यह बात उसको भा गई और उसने भी भारतीय सेना की प्रतियोगिता परीक्षा की तैयारी आरंभ कर दी । उसने भारतीय सेना का दूसरा अंग चुना और वह भारतीय सेना में पाइलेट ऑफिसर है ।

तीसरे पुत्र ने भी यही इच्छा जाहिर की है । मैंने उससे भी कह दिया है कि वह प्रतियोगिता परीक्षा की तैयारी आरंभ करे । मैं चाहूँगा कि वह नेवी में जाए । वह भी आजकल इसी धुन में है और इस बात में मेरी पूरी सहमति है । मेरा चौथा पुत्र, अभी बहुत छोटा है । यदि उसने भी यह इच्छा प्रकट की कि वह डिफेंस सर्विसेज में जाए तो यह मेरा सौभाग्य होगा ।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मुझे ईश्वर ने मौका दिया है कि मैं देश-रक्षा के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग कर सकूँ ।

**प्रश्न :**

वास्तव में, वीर साहब, इससे बड़ा त्याग क्या हो सकता है कि आपने अपने कलेजे के टुकड़ों को भारत की सेवा के लिए अर्पित कर दिया है । व्यक्तिगत रूप से देश की सेवा के लिए आपका त्याग सराहनीय है और किसी को भी इससे स्पर्धा हो सकती है ।

जैसा कि आपने कहा यथासंभव राष्ट्रीय रक्षा में सहयोग देने के लिए आप हर वक़्त प्रयत्नशील और तत्पर हैं । आप तो रोजमर्रा के काम में अनेकों सरकारी कर्मचारियों से मिलते रहते हैं । क्या सभी सरकारी कर्मचारियों का यही रवैया है ?

**उत्तर :**

जी हाँ ! मैं समझता हूँ कि हर सरकारी कर्मचारी का यह कर्त्तव्य है कि देश की संकट-स्थिति में जी-जान से मेहनत करे और इस संबंध में जो कुछ भी योगदान दे सके, दे । सिर्फ़ सैनिक ही देश की रक्षा में सहायता दे सकता है, यह विचार संकीर्ण और एकांगी है । ऐसे अनेकों कार्य हैं, जिनमें सैनिकों को हमारी सहायता की आवश्यकता है । हम राष्ट्रीय धन, समय और अनाज बचाकर सीमा पर लड़ने वाले प्रहरियों का उत्साह बढ़ा सकते हैं ।

मैं आपका और अधिक समय नहीं लूँगा । मैं समझता हूं कि यदि प्रत्येक सरकारी कर्मचारी इसी दृष्टिकोण को अपनाए तो भारतवर्ष का भविष्य बहुत उज्ज्वल है ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
113553
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

# लेखक-परिचय

- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (स्व०), हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि।
- संजय भट्टाचार्य, पूर्वासा लिमिटेड, 54, गनेश एवेन्यू, कलकत्ता-13।
- राजकमल चौधरी, भारत मेल, पटना-1।
- नरेन्द्र शर्मा, आकाशवाणी, नई दिल्ली।
- राजीव सक्सेना, II ई-24, लाजपतनगर, नई दिल्ली।
- सदानन्द रेगे, 2173, सारस्वत कालोनी, माँटुंगा, बम्बई-19।
- दिनकर सोनवलकर, दमोह (म० प्र०)।
- जगदीश चतुर्वेदी, 9/2, ईस्ट पटेलनगर, नई दिल्ली-12।
- स्वदेशरंजन दत्त, द्वारा 'देश' (साप्ताहिक), आनन्द प्रेस, 6, सुतारकिन स्ट्रीट, कलकत्ता-1।
- रामकिशोर द्विवेदी (डॉ०), 15 बी०—गुप्ता कालोनी, दिल्ली-9।
- जगदीश गुप्त (डॉ०), मोतीमहल, दारागंज, इलाहाबाद।
- शांतिलाल आहूजा, सदस्य, राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर।
- कमलेश्वर, सम्पादक 'नई कहानियाँ', राजकमल प्रकाशन, फ़ैज़ बाजार, दिल्ली-6।
- संतोख सिंह धीर, मंडी गोविंदगढ़ (पंजाब)।
- के० कुमार, एम० पी० टी० 427, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली।
- स्टीपेन जोरयान, विदेशी कथाकार।
- जीवन नायक, उप-निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली-6।
- शक्तिपाल केवल, ई-38, कमलानगर, दिल्ली-6।
- नरेन्द्रपाल सिंह, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली।
- सुरजीत, सी-34, सुदर्शन पार्क, मोतीनगर, नई दिल्ली-15।
- शिवकुमार, जोशी 11, आरमेनियन स्ट्रीट, कलकत्ता-1।
- मनहर चौहान, आई-154, कीर्तिनगर, नई दिल्ली-15।
- सूबासिंह, संपादक, 'पंचायती राज', पंचायत विभाग, चंडीगढ़।
- शाकिर पुरुषार्थी, जगराओं (ज़िला लुधियाना)।
- मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)।
- कृष्ण 'अशांत', ईस्ट पटेलनगर, नई दिल्ली।
- रामधारी सिंह 'दिनकर', 11, कैनिंग लेन, नई दिल्ली।
- आनन्दमय दासगुप्त, 567, डबल स्टोरी, न्यू राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली।
- हरिवंशराय 'बच्चन' (डॉ०), विशेष अधिकारी (हिन्दी), विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली।
- जमना (कुमारी), 38, फ़ैज़ बाज़ार रोड, दरियागंज, दिल्ली।
- नन्द चतुर्वेदी, विद्या भवन, ग्राम विद्यापीठ, उदयपुर।
- मनमोहिनी (श्रीमती), संपादिका 'लहर', पो० बॉ० नं० 82, अजमेर।
- बालकृष्ण राव, 'अमरावती', 9, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- जनार्दन बाघमारे, अँग्रेज़ी विभाग, डॉ० अम्बेडकर कॉलेज आफ कामर्स, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)।
- भगवतशरण उपाध्याय (डॉ०), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- प्रभाकर माचवे (डॉ०), 120, रवीन्द्रनगर, नई दिल्ली-11।
- वासुदेवशरण अग्रवाल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- प्रफुल्लदत्त गोस्वामी (डॉ०), हिल साइड, गोहाटी (असम)।
- वीणा जैन (कुमारी), दरियागंज, दिल्ली-6।
- सुमित्रानन्दन पंत, 18-बी०, स्टेनली रोड, इलाहाबाद।
- ग० ह० पुराणिक, ई-4, साउथ मोती बाग, नई दिल्ली।
- दिनकर कौशिक, सेक्टर-4, 466-रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली।
- हेम बरुआ, 59-बी, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली-11।
- नवारुढ़, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुहाटी (असम)।
- चिन्तामणि बेहेरा, द्वारा, साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली।
- उपेन्द्रकुमार दास, द्वारा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
- गोपाल मित्तल, नेशनल अकादमी, 9, अंसारी मार्केट, दरियागंज, दिल्ली-6।
- अ० रा० मित्र, द्वारा, कन्नड़ विभाग, सट जोसेफ कॉलेज, बैंगलूर-1।
- कमल नारायण (श्रीमती), 15ए/25, वेस्टर्न एक्सटेंशन एरिया, करौल बाग, नई दिल्ली।
- प्रेमनाथ दर, विशेष अधिकारी, कश्मीरी यूनिट, आकाशवाणी, नई दिल्ली।
- श्याम परमार (डॉ०), 6/13, ईस्ट पटेलनगर, नई दिल्ली।
- शशिकांत कड़किया, गुजराती के कवि।
- सुलभा पुराणिक (कुमारी), ई-4, साउथ मोतीबाग, नई दिल्ली।
- कोत्त मंगलम् सुब्रह्मण्यम्, द्वारा, पब्लिकेशन सिन्डीकेट, जयपुर।
- मेघराज मुकुल, द्वारा, पब्लिकेशन सिंडीकेट, मोतीसिंह भूमिया का रास्ता, जयपुर।
- कालोजी नारायण राव, नक्कलगुट्टा, हनमकोंडा (आंध्र)।
- भीमसेन निर्मल, नक्कलगुट्टा, हनमकोंडा (आंध्र)।
- स्वर्ण, संपादक 'चेतना', भगीरथ पैलेस, चाँदनी चौक, दिल्ली-6।
- शांतिदेव, 14/17, तिलक नगर, नई दिल्ली।
- कल्याणी सेन (श्रीमती), द्वारा, अमृत पत्रिका, कलकत्ता।
- साविता पारिजात, कोजगिरी बँगला, पो० बॉ० सौंदलगा (जिला बेलगाँव)।
- वल्लतोल (स्व०), मलयालम के सुप्रसिद्ध कवि।
- प्रभाती, पो० देवरी (सागर) (म० प्र०)।
- वासुदेव शास्त्री, सार्वभौम संस्कृत-प्रचार कार्यालय, टेढ़ीनीम, वाराणसी।
- नरेन्द्र व्यास, ई-61/62, लाजपतनगर, नई दिल्ली-14।
- माखनलाल चतुर्वेदी, कर्मवीर कार्यालय, खंडवा (म० प्र०)।
- सुनीतिकुमार चटर्जी, 'सुधर्मा', 16, हिन्दुस्तान पार्क, कलकत्ता-29.
- प्रेमनाथ धीर, उप सचिव, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।

M 7 CH Dte (NP)/63—GIPF.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar